

ओ! मेरे राजहंस





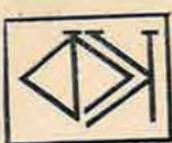
जन्म—१० अक्टूबर, १९१७

शिक्षा—गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगड़ी से  
देदालंकार, आगरा विश्व विद्यालय से एम० ए०

यात्रा—कैलाश-मानसरोवर, हिमालय और  
भारत का विस्तृत भ्रमण, नेपाल, मारीशस,  
बंगलादेश

प्रकाशित पुस्तकों—१. जेल यात्रा के ६ मास,  
२. जातिभेद का अभिशाप, ३. जल बिन्दु (अनु०)  
४. स्वेतलाना (उपन्यास), ५. गांधी जी के हास्य-  
विनोद, ६. मधुर आकांक्षा (अनु०) ७. सातवलेकर  
अभिनन्दनग्रन्थ, ८. मारीशस स्मारिका, ९. बंगला-  
देश : स्वतंत्रता के बाद (पुरस्कृत), १०. दयानन्द  
दिव्य-दर्शन, ११. ईश्वर—वैज्ञानिकों की दृष्टि में,  
१२. ओ मेरे राजहंस ! (आपके हाथ में)

सम्प्रति—हिन्दुस्तान दैनिक में साहित्य सम्पादक



दिल्ली प्रकाशन

दिल्ली-३२



# ॐ! मेरे राजहंस

द्वितीश



© लेखक/संस्करण : प्रथम १९७८/मूल्य : ₹० १५.००/प्रकाशक :  
कला प्रकाशन, पी-१० नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२/मुद्रक : अरुण  
कम्पोजिंग एजेंसी द्वारा प्रगति प्रिट्स, दिल्ली-३२।

---

Oh ! MERE RAJHANS      By Chhitish      Rs. 15.00

## वस्तुकथा\*

सन् 1977 आया। आपातकाल जारी था। लेखनी और वाणी पर अंकुश में कोई कमी नहीं थी। पर रात्रि के गहन अन्धकार के बीच आकाश में कहीं अरुणोदय की आभा भी भाँक रही थी। लालिमा स्पष्ट नहीं थी। पर आस्था-भरी मन की आँखें दूर क्षितिज पर उसकी भलक अवश्य पा रही थी। भले ही वह कल्पना-विलास हो, पर वह था, इसी-लिए लेखक ने नववर्ष के दिन “कलम आज उनकी जय बोल।” कह-कहकर नए वर्ष का स्वागत किया।

फिर उषा-कालीन शीतल पवन का स्पर्श हुआ—उदयाचल के शिखर पर श्रुणभा के आभास ने मन-प्राण में नये चैतन्य का संचार किया। शिशिर और हेमन्त की जकड़न-भरी ठण्ड से मुक्ति दिलाता, ‘आया वसन्त, पाला उड़न्त’ का निनाद दिखाओं में गंजाता वसन्त आया, तो प्रकृति के प्रांगण में हुए इस पट-परिवर्तन को लक्ष्य करके लेखक अनायास पूछ बैठा : “क्यों सखि ! क्या वसन्त ऋतु आ गई ?” वसन्त का कोयल के साथ सतत् सम्बन्ध है। जब तक कोयल की आवाज पर प्रतिवन्ध है, तब तक कैसे मान लें कि वसन्त ऋतु आ गई ?

पर धीरे-धीरे प्रकृति के पट-परिवर्तन के साथ राजनीति का भी पट-परिवर्तन होने लगा। तानाशाही के लिए प्रसिद्ध पाकिस्तान में भी जब आम चुनावों की घोषणा हो गई, तब लोकतंत्र का दम भरने वाले भारत में भी नए चुनावों की तैयारी हुई। यह आवश्यक था—जनता को उसका लोकतंत्रीय अधिकार देने की दृष्टि से उतना नहीं, जितना अपनी अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिष्ठा बचाने की दृष्टि से। समाचार-पत्रों को भी अभिव्यक्ति के स्वातंत्र्य की कुछ दिखावटी छूट दी गई, पर आन्तरिक आतंक में कोई कमी नहीं थी। देखते-देखते यवा कांग्रेस और भारत के भावी भाग्य-विधाता ‘युवराज’ का डंका चारों ओर बजने लगा एवं नए चुनावों के माध्यम से तथाकथित पुरानी पीढ़ी को जिन्दा ही दफनाने की विसात विछु गई। तब पत्रकार की कलम ने, ‘पुरानी पीढ़ी : नई पीढ़ी’ लिखकर अपनी ओर से दोनों में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया।

राजनीति का चक तेजी से घूमने लगा। रक्षामंत्री पद से और कांग्रेस से इस्तीफा देकर श्री जगजीवनराम ने सारी विसात उलट दी। तब ‘जीवन है नाम चुनौती का’ लेख निकला।

\* प्राचीन पालि ग्रन्थों में वस्तुगाथा (वस्तुकथा) शब्द उसी अर्थ में प्रयुक्त होता रहा है जिस अर्थ में आजकल भूमिका शब्द प्रयुक्त होता है।

फिर देश के राजनीतिक क्षेत्र में जो उथल-पुथल और हलचल प्रारम्भ हुई उसमें कई नए-नए प्रश्न उभरकर सामने आए। जैसे— क्या कोई व्यक्ति विशेष ही समग्र भारत का प्रतीक बन सकता है? ‘भातमाता की जय’, ‘जबान का रस’, ‘प्रहलाद और होली’, ‘जो जागत है, सो पावत है’—आदि लेखों में इन्हीं प्रश्नों का उत्तर छिपा है।

घटना घट चुकने पर अपनी बुद्धिमानी सावित करने वालों या उससे अपना स्वार्थ सिद्ध करने वालों की कमी नहीं है। कमी नहीं है उन लोगों की भी जिन्होंने आपातकाल में बुद्धिजीवियों को साष्टांग दण्डवत् करते और बाद में उन्हें गिरणिट की तरह रंग बदलते देखकर कोसा है। पर जिसने पत्रकारिता को मिशन के रूप में स्वीकार किया हो जिसकी दृष्टि में राष्ट्र सदा बड़े से बड़े व्यक्ति से बड़ा रहा हो, और राष्ट्र-हित के लिए जो कभी किसी राजनीतिकवाद से बँधा न हो, ऐसे पत्रकार की निश्चल प्रतिक्रिया इन सब लेखों में व्यक्त हुई है।

भूठ नहीं बोलूँगा। उस घनधोर आतंक के वातावरण में कभी-कभी मन विचलित हो उठता था। रात-रात भर नींद नहीं आती थी। सोचता था—आज शाम को यह लेख लिखकर आया हूँ, कल प्रातःकाल ही प्रकाशित होकर यह लाखों लोगों के हाथ में पहुँचेगा, तब इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी? क्या अधिनायकवादी मनोवृत्ति इसे सहन करेगी? विचार-स्वातंत्र्य का मजा चखाने के सैकड़ों हथकण्डे उसके पास हैं। कभी-कभी सदाशयी मित्रों ने भी सलाह दी कि आग से मत खेलो। पर अपनी अन्तरात्मा की आवाज का क्या कहूँ?

और यों मेरे मन का राजहंस आकाश में उड़ता रहा, उड़ता रहा। इन सभी लेखों में उस राजहंस की उड़ान के दर्शन आपको होंगे।

हंस के संबन्ध में कुछ कवि प्रौढ़ोक्तियाँ प्रसिद्ध हैं। जैसे—वह नीर-क्षीर विवेकी होता है या मोती चुंगता है। राजहंस के बारे में कहा जाता है कि वह मानसरोवर में ही निवास करता है। शीतकाल में उड़कर गंगाटट के मैदानों में आ जाता है, पर शीतकाल समाप्त होते ही पुनः लौट जाता है। मानस का सरोवर ही वह मानसरोवर नहीं है क्या?

मैं तो अपने राजहंस से इकबाल के शब्दों में इतना ही कहूँगा :—

ऐ तायरे लाहूती उस रिज्क से मौत अच्छी !

जिस रिज्क से आती हो परदाज में कोताही ॥

## विषय सूची

कलम ! आज उनकी जय बोल	□ ६
अमृत-कुम्भ में विष	□ १३
यह नई हवा चली है	□ १७
सखि ! क्या बसन्त छतु आ गई	□ २१
पुरानी पीढ़ी : नई पीढ़ी	□ २५
जीवन है नाम चुनौती का	□ ३०
शिव के रूपक का एक रूप	□ ३४
भारतमाता की जय	□ ३८
जबान का रस	□ ४२
प्रह्लाद और होली	□ ४५
जो जागत है, सो पावत है	□ ४६
विरक्ति 'मेड इन इण्डिया' से	□ ५३
राम का अवतार-कार्य	□ ५७
आदमी की खोपड़ी	□ ६१
फूलों से न मारे कोई मेरे दीवाने को	□ ६६
किसानों का दोस्त या दुश्मन	□ ७०
रेगिस्तान में फूल खिलेंगे	□ ७४
वहुजन सुखाय, वहुजन हिताय	□ ७८
ओ रे मेरे राजहंस !	□ ८२
ऐसी बही बायार	□ ८७
एक मुँह, दो हाथ	□ ९१
भागीरथी और नए भगीरथ	□ ९५
कारावास का वरदान	□ ९९
हे आषाढ़ के मेघ	□ १०३

क्रान्ति का एक और चरण	<input type="checkbox"/>	१०७
उनके गले का हार तो तैयार हो गया	<input type="checkbox"/>	११२
केहि न राजमद दीन्ह कलंकू	<input type="checkbox"/>	११६
मन्दिर पुराना पड़ गया है	<input type="checkbox"/>	१२०
जिन्दगी किताब से बँधी नहीं	<input type="checkbox"/>	१२५
ब्राह्मण की गौ, जो अवध्य है	<input type="checkbox"/>	१२६
वाण संभालो लक्ष्मण	<input type="checkbox"/>	१३३
अति को भलो न वरसनो	<input type="checkbox"/>	१३७
मैं उसी दिन शान्त होऊँगा	<input type="checkbox"/>	१४१
अर्जुन का व्यामोह	<input type="checkbox"/>	१४६
सत्य से खिलवाड़	<input type="checkbox"/>	१५०
गीता का राजमार्ग	<input type="checkbox"/>	१५५
हिन्दी तो वनवासिनी	<input type="checkbox"/>	१६०
आत्मवंचना का अभियान	<input type="checkbox"/>	१६४
आदमी को देखकर शैतान आधा रह गया	<input type="checkbox"/>	१६८
गांधी शरवत नहीं, प्रखर पावक-प्रवाह था	<input type="checkbox"/>	१७२

## कलम ! आज उनकी जय बोल

कंसा विचित्र संयोग है—नए वर्ष का पहला दिन और मुहर्रम—दोनों साथ-साथ । ऐसा संयोग बिरल ही होता है । इसी संयोग से अचानक हजरत मुहम्मद साहब के जीवन की एक घटना स्मृतिपथ पर उतर आई ।

हजरत मुहम्मद साहब अपने कुछ साथियों के साथ हजरत अली के घर गए । हजरत अली ने अतिथियों के स्वागतार्थ एक थाली में शहद भरकर सामने रखा । हजरत मुहम्मद साहब की दृष्टि शहद में पड़े एक बाल पर गई । उसे देखकर पैगम्बर साहब ने साथियों की ओर देखकर कहा : ‘क्या थाली में पड़े इस बारीक बाल को देखकर आपके मन में कोई विचारकण जागृत होता है ?’

पैगम्बर साहब की बात सुनकर हरेक ने अपना विचार प्रकट करना आरम्भ किया । हजरत अबूबकर सिद्दीक ने कहा : ‘इस्लाम इस थाली से अधिक पवित्र है । उस पर ईमान लाने वाले दिल की आस्था इस शहद से अधिक मीठी है, परन्तु उस आस्था को बनाए रखना इस बाल से भी ज्यादा बारीक और कठिन है ।

हजरत उमर फारूक बोले—‘हुक्मत इस थाली से अधिक पवित्र है और हुक्मत चलाने या उसे भोगने की इच्छा इस शहद से भी अधिक मीठी है परं उचित न्याय करना बाल से भी ज्यादा बारीक और कठिन है ।’

हजरत उस्मान गनी ने कहा—‘विद्या इस थाली से अधिक पवित्र है और विद्या प्राप्ति की लगन इस शहद से अधिक मीठी है, परं उसके अनुसार आचरण करना इस बाल से भी ज्यादा बारीक और कठिन है ।’

## १० :: ओ ! मेरे राजहंस

मेजवान हजरत अली ने कहा—‘अतिथि इस थाली से अधिक पवित्र है, उसकी आवभगत इस शहद से अधिक मीठी है, पर अतिथि का दिल जीतना इस बाल से भी ज्यादा बारीक है।’

‘ हजरत फातिमा ने कहा—‘स्त्री के लिए शरम इस थाली से अधिक पवित्र है, उसका शील और अस्मत इस शहद से भी अधिक मधुर है, पर दूसरों की नजर से अपने को बचाना बाल से भी ज्यादा बारीक और कठिन है।’

सलललाहो-अलाहे-वल्लम हजरत मुहम्मद साहब ने सबके विचार ध्यानपूर्वक सुने और उसके बाद अपनी बात कही—‘आत्मज्ञान इस थाली से अधिक पवित्र है, उसकी प्राप्ति शहद से ज्यादा मीठी है, पर उसे हृदय में स्थिर रखना इस बाल से भी ज्यादा बारीक और कठिन है।’

आखिर नव वर्ष के पहले दिन में वर्ष के और दिनों से क्या विशेषता है—यह दिन भी तो और सब दिनों की तरह ही है। फिर इस दिन वायुमन्डल में सुगन्ध की नई गमक क्यों लगती है ? क्यों शहर पर छाए कुहरे में से छन कर आती हुई किरण में नई चमक नजर आती है ?

अधिकांश मनुष्य तो ऐसे होते हैं जैसे कस्बों की उजड़ी हुई हवे-लियाँ—जैसे मकान-मालिक सब कमरों में ताला लगाकर किसी महानगर में रहने चला गया हो और लौटकर हवेली की ओर भाँकता भी न हो। किन्तु नए साल के पहले दिन जैसे हिम्मत करके दबे पांव वह हवेली के अधेरे खंडों में जाता हो, भरोसे और खिड़कियाँ खोलकर देखता हो कि सड़ांध कहाँ से आ रही है। यह आत्मज्ञान की हो तो निशानी है।

पिछले बारह महीने में कितना कुछ गुजर गया—कितनी आकस्मिक घटनाएं, कितने खतरे, कितनी विपदाएं, कितने नाटक ! इस पाताल में उत्तरते की क्या जरूरत है, जहाँ पराजित भावोद्वेग, काने-कुबड़े दैत्य और कुचली हुई स्मृतियाँ सिसक रही हैं। वे आतंककारी खतरे अभी खत्म कहाँ हुए हैं !

नए वर्ष की अगवानी का सबसे सरल तरीका है—आत्मज्ञान और आत्म-विश्लेषण। कहाँ से चले थे, किस मार्ग से जाना है, और मंजिल

कहाँ है ? नया वर्ष अपनी भोली में ये प्रश्न लाया है, और उनके उत्तरों के संकेत भी। आर्थिक और सामाजिक क्षेत्र में जितनी पुरानी बङ्गर जमीन पिछले वर्ष ने तोड़ी है, उतनी सदियों से नहीं टटी थी। इसी आत्मज्ञान ने नए लहलहाते सुन्दर सुखद भविष्य की कल्पना को पंख दिए हैं।

हिमाचल और कश्मीर में हिमपात से और शीत लहर की कंपकंपी से नया वर्ष प्रारम्भ हुआ है। आयुर्वेद-विशारद जाड़े को बुढ़ापे का दुश्मन बताते हैं। इसलिए बूढ़े लोग जाड़े से घबराते हैं और शरीर में अपनी ऊष्मा ठण्डी पड़ जाने पर खून में फिर से रवानी लाने के लिए तरह-तरह के रसायन और कुश्ते खाते हैं। जो असहाय ऐसा नहीं कर पाते वे शीत लहर के शहर के शिकार बनकर समाचार-पत्र की सुखियों का खाजा बनते हैं।

उधर भगवती श्रुति कहती है—‘जीवेम शरदः शतम् ।’ यह सौ ‘शरद’ ही जीने की कामना क्यों, सौ ग्रीष्म और सौ बरसात तक जीने की इच्छा क्यों नहीं ? शायद इसीलिए कि जिस व्यक्ति में इतनी जीवन शक्ति है कि सर्दियाँ ठाठ से गुजार सके, उसका फिर गर्मी या बरसात कुछ नहीं बिगाड़ सकती।

शायद तेज जाड़े के साथ आया यह नव वर्ष ‘वृद्ध भारत’ की जीवनी शक्ति की परीक्षा के लिए ही आया है ! कोई बात नहीं—‘ब्लो ब्लो दाउ विण्टर विंड’—शीत हवाओ ! तुम कितना ही चीरती हुई क्यों न बहो, आपतकाल के मूक संघर्ष ने इस वृद्ध भारत की नसों में ऐसा युवा-रक्त प्रवाहित कर दिया है कि राष्ट्रगीत के अल्प प्रचलित अंश में विश्वकवि द्वारा वर्णित—

पतन अभ्युदय बन्धुर पन्था

युग-युग धावित यात्री

—वार-वार गिरकर उठने वाला युगानुयुग से दौड़ लगाता हुआ यह यात्री अपनी मंजिल पर पहुँचे बिना दम नहीं लेगा।

यूरोप के प्रसिद्ध रेडियो हास्य अभिनेता लू कास्टेलो ने अपने जीवन की एक घटना का उल्लेख किया है—‘मैं रेडियो स्टेशन पर अपने साथियों

के साथ हस्य-अभिनय का इत्तर्संल कर रहा था । तभी घर से फोन आया कि बेटा लड़का मर गया । मेरे दुःख और आश्चर्य का ठिकाना न रहा । अभी आधा घण्टा पहले जो बच्चा घर में मेरे साथ हँसी-खुशी के साथ खेल रहा था, वह अचानक मर कैसे गया ? मैं फौरन घर पहुँचा । मेरी पत्नी ने बिलखते हुए बताया कि किस प्रकार हौज में गिरकर बच्चे का प्राणान्त हो गया । सन्देह की गुंजाइश नहीं थी । मासूम शिशु का शब्द मेरे सामने पड़ा था । मैं अपना सिर पकड़ कर बैठ गया । सोचने-समझने की शक्ति जाती रही । … पर मुझे अपना प्रोग्राम पूरा करना था । किसी प्रकार ठीक समय पर रेडियो स्टेशन पहुँच गया । इतने बड़े दुःख के बाद भी मैं अपना हास्य-अभिनय कैसे पूरा कर सका, मैं नहीं जानता । पर इस दुर्खद घटना के बाद मैंने यह गिनना छोड़ दिया कि मेरे पास क्या-क्या है और मैं किस-किस सौभाग्य का अधिकारी हूँ । मैंने सोचा कि जो-जो कुछ मैं अपने लड़के के लिए करना चाहता था, उसकी जरूरत और बच्चों को भी तो हो सकती है । मेरे पास-पड़ीस में ऐसे संकड़ों बच्चे थे, जिनके लिए मैं कुछ कर सकता था । वसं, मैं इसी काम में लग गया, और मुझे औरों के बच्चों में अपने बच्चे की शक्ति दिखाई देने लगी ।'

गोस्कार्मी तुलसीदास ने कहा है—

कीम्हे प्राकृत-जन गुणं गंतां ।

सिर धुनि गिरा लागि पञ्चतानां ॥

—साधारण जमों का गुणगमन करने से सरस्वतीं अपना सिर धुनने लगती है । नहीं, धुताइं जी नहीं । सरस्वतीं का वरद-पुत्र जिसको अपनी कलम का प्यार देता है, वह साधारण जन रह ही कहाँ जाता है । वह तो आराध्य है—हमारा, आपका और सबका । इसे युग का, इस वर्ष का—कलम ! आज उस जनता-जनर्मदिन की जंग बोलें !



## अमृत-कुम्भ में विष

स्कन्द युराण के अनुसार समूद्र-मन्थन से चौदहवें रत्न के रूप में प्राप्त अमृत-कुम्भ को असुरों के हाथ न लगने देने के विचार से जब देवगण ले भागे, तब उस अमृत-कुम्भ के जहाँ-जहाँ छींटे पड़ते गए वहाँ कुम्भ-पर्व आयोजित होने लगा।

वैदिक और पौराणिक परम्परा में अमृत और कुम्भ का विशिष्ट अर्थ है और उस परम्परा में बाहर से अर्थभेद दिखने पर भी अन्दर से अर्थसाम्य है। संक्षेप से इतना ही कहा जा सकता है कि असुरत्व जहाँ अनात्म-संस्कृति का प्रतीक है, वहाँ देवत्व आत्म-संस्कृति का उद्घोषक है। देवासुर संग्राम भी आत्म-अनात्म-संस्कृति के वैचारिक संघर्ष की ही निशानी है।

आत्मा के साथ ही समस्त वैदिक वांगमय में अमरता का भाव आत्मप्रोत है। यही देवों द्वारा अमृत-कुम्भ को हस्तगत करने का आशय प्रतीत होता है। यज्ञ-याग और तप-त्याग उसी अमृतत्व (अमरता) की साधना का अंग है। श्रद्धालु भक्त इसी भावना से तीर्थ यात्रा करते हैं।

तीर्थों में तीर्थराज है—प्रयाग, जहाँ जन्म-कन्या गंगा, यम-स्वसा यमुना और ब्रह्म-सुता सरस्वती का संगम होता है। यमुना और गंगा का संगम तो प्रत्यक्ष है ही, पर सरस्वती का संगम परोक्ष और अदृश्य है। यह इस बात का भी संकेत है कि भारतीय जन-मानस सांस्कृतिक दृष्टि से कितना ही निष्ठावान वयों न हो, पर अपनी उड़ान में उसने कभी कल्पना का दामन नहीं छोड़ा।

फिर गंगा तो ठहरी देवनदी—वह अन्तरिक्ष, पृथ्वी और पाताल

तीनों लोकों का पवित्र करती है। इसका आध्यात्मिक अर्थ कुछ भी हो, पर भौगोलिक अर्थ भी कम यथार्थ नहीं है। हिम-शिखर के माध्यम से वह अंतरिक्ष का स्पर्श करती है, समतल मैदान में प्रवाह के समय वह पृथ्वी-तल का स्पर्श करती है और समुद्र में बिलीन हो कर वह पाताल का स्पर्श करती है। समुद्र के वैज्ञानिक यह भी कहते हैं कि समुद्र-तल में गंगा का प्रवाह उसके स्थल-विस्तार से भी अधिक लम्बा है। कितना चमत्कारी यथार्थ है।

पतित पावनी गंगा के सम्बन्ध में अबुल फजल ने 'आइने अकबरी' में लिखा है कि अकबर बादशाह को गंगा जल से इतना प्रेम था कि वे घर में या यात्रा में सदा गंगाजल ही पिया करते थे। कुछ विश्वासपत्र लोग गंगा-तट पर इसीलिए नियुक्त रहते कि वे घड़ों में गंगाजल भर कर और उन पर मुहर लगा कर बराबर भेजते रहें।

अकबर तो हिन्दुत्व प्रेमी था, इसलिये गंगाजल के प्रति उसकी श्रद्धा से आश्चर्य नहीं होता। पर औरंगजेब जैसे कट्टर मुसलमान का भी गंगाजल के बिना काम नहीं चलता था। शाहजादा दाराशिकोह की चिकित्सा करने वाले फांसीसी यात्री बनियर ने अपने यात्रा-विवरण में लिखा है कि दिल्ली और आगरा में औरंगजेब के लिए खाने पीने की सामग्री के साथ गंगा-जल भी रहता था। जब वह यात्रा पर होता था तब ऊँटों पर लाद कर गंगाजल भी साथ ले जाया जाता था।

जिस गंगा की महिमा का वर्णन करते-करते कवि-गण थकते नहीं, उसी गंगा के प्रति भक्त के मन में यह धारणा जमी है—

गंगा गंगेति यो ब्रूयात्  
योजनानां शतरपि ।  
मुच्यते सर्वपापेभ्यो  
विष्णु लोकं स गच्छति ॥

—जो सौ योजन दूर से भी गंगा का नाम ले लेता है, वह सब पापों से छूट कर विष्णुलोक को प्राप्त होता है। देहावसान के पश्चात भी भगवती भागीरथी की गोद में आस्तिक हिन्दू के 'फूल' जब तक नहीं सिराएं जाते, तब तक वह अपने आपको स्वर्ग जाने का अधिकारी

नहीं समझता। जिसका दर्शन, मज्जन, पान—सभी कुछ पुण्यदायी हैं, उसी गंगा की युगीन औद्योगिक सभ्यता ने एसी दुर्गति कर दी है कि प्रयाग के इस महाकुम्भ के अवसर पर डॉक्टरों ने तीर्थ यात्रियों को उसका पानी पीने से रोक दिया है। यात्रियों के लिए पेय जल की अलग से विशेष व्यवस्था की गई है और उनसे ध्वनि-विस्तारक यंत्रों द्वारा अनुरोध किया जा रहा कि नदी का पानी न पीयें। कुम्भ पर जाने वाले यात्रियों को हैजे का टीका लगाया जाता है और गंगा का जल पीने से उन्हें इसीलिए रोका जाता है कि डॉक्टर की दृष्टि से हैजे का सबसे बड़ा संवाहक नदी का जल है। वाराणसी के ऊपर वैज्ञानिकों ने दशाश्वमेघ घाट को छूकर बहने वाली गंगा के जल को अपेय और रोगकारक माना है। जब काशी तल-जल वाहिनी-गंगा का यह हाल है, तब कलकत्ता की हुगली का तो कहना ही क्या !

गंगा को पवित्र मानने की भावना अकारण नहीं है। जिस प्रकार की चट्टानों, रेतीले धरातल और अन्य स्तरियों से समन्वित भूखण्ड पर से होकर वह बहती है, उसके कारण उसके जल में स्वतः शुद्ध हो जाने की और अपने अंदर डाली गई मलीनता को शुद्ध कर देने की अद्भुत क्षमता है। पर उस क्षमता की भी सीमा है। और अब ऋषि-केश से लेकर हावड़ा तक इस पतित पावनी नदी के किनारे जितने शहर-कस्बे-गाँव बढ़े हैं उनके गन्दे नाले तो उसमें गिरते ही हैं, लगातार बढ़ते-औद्योगिक कारखानों के उच्चिष्ठ रासायनिक द्रव्य भी उसी में गिराये जाते हैं। अब इस गन्दगी की मात्रा इतनी बढ़ गई है कि वह गंगा की शोधन क्षमता पर हावी हो गई है।

जल-प्रदूषण की यह समस्या केवल भारत, या गंगा, या किसी एक नदी के साथ नहीं है, बल्कि समस्त संसार के समस्त जल-साधनों के साथ है। यह सब औद्योगिक सभ्यता के विस्तार का चमत्कार है। कुछ अर्से पहले बरीनी के कारखाने से निकला अवशिष्ट रासायनिक द्रव्यों की मिलावट से गंगा जल इतना दूषित हो गया था कि बिहार की राजधानी पटना तथा अन्य गंगा तटवर्ती बड़े शहरों के लिए पेय जल की समस्या हो गई थी। गोवा में एक कागज के कारखाने का

## १६ : ओ ! ऐरे राजहंस

लाइसेंस सरकार को इसलिए समाप्त करना पड़ा था कि उसके उच्छेष से समुद्र की मछलियाँ मरने लगी थीं ।

सलेरिया के नियंत्रण के लिए डी०डी०टी० का और अन्य रोगों के निवारण के लिए अन्य कृमि-नाशकों का जिस विशाल पैमाने पर प्रयोग किया जाता है, वह सब नदी-नालों के रास्ते समुद्र में ही तो पहुँचता है । और कृमिनाशक तत्वों से समुद्र का जीव-जगत प्रभावित होता है । अमरीका के तेंतीस राज्यों में इसीलिए मछली पकड़ने पर प्रतिबंध लगा दिया गया है, क्योंकि दूषित मछलियों के आहार से मानव-समुदाय का जीवन संकट में पड़ सकता है । कुछ राज्यों ने इसीलिए डी० डी० टी० के प्रयोग पर भी प्रतिबंध लगा दिया है । इस समय संसार भर में प्रतिवर्ष लगभग दो लाख मीट्रिक टन डी० टी० इस्तेमाल होता है । इसी प्रकार लगभग साठ लाख मीट्रिक टन पेट्रोलियम प्रतिवर्ष समुद्रों में पहुँच जाता है । इसके अलावा जल को दूषित करने वाले और कितने ही रासायनिक द्रव्य हैं जिनकी संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही चली जाती है । इस जल-प्रदूषण की विशलता और सांघातिकता को देख कर मनुष्य-जाति के भविष्य को सोच-सोच हृदय कम्पायमान हो जाता है ।

अमरकोश में जल का एक पर्यायवाची शब्द 'जीवन' भी है । जल सचमुच ही जीवन है । यह जीवन के लिये सचमुच ही अमृत है । पर इम अमृत-कुम्भ में भी मानव ने स्वयं अपनी नासमझी से इतना विष घोल दिया है कि यह अमृत-कुम्भ विष-कुम्भ बनता जा रहा है ।

अमृत-कुम्भ को अमृत-कुम्भ बनाये रखने के लिए मानव जाति को पुनः देवासुर संग्राम करना पड़ेगा ।

## यह नई हवा चली है !

कोलम्बस कभी भारत की खोज करने चला था, पर वह भारत के बजाय पहुँच गया अमरीका । उस समय का ज्ञात संसार अमरीका से अनभिज्ञ था, उसकी खोज से एक नई दुनिया का पता लगा । पर अमरीका के मूल निवासियों का नाम आज भी 'रेड इंडियन' है और वह इस बात का द्योतक है कि कोलम्बस ने उन्हें 'भारतीय' ही समझा था । 'रेड' विशेषण तो बाद में वास्तविक भारतीयों से अन्तर करने के लिए ही लगाया गया ।

कोलम्बस जिस श्रेय से वंचित रह गया, वह प्राप्त हुआ वास्को-डिंगामा को । वास्को-डिंगामा ही प्रथम यूरोपीय व्यक्ति था जो अपना जहाज लेकर भारत के कालीकट के तट पर उतरा था और जिसने बाद में गोवा में पुर्तगाली साम्राज्य की नींव डाली थी । आज भी यूरोपवासियों के मन में इन दोनों महान अन्वेषकों की गौरवगाथा अक्षुण्ण है । पर अब लगता है कि वास्को-डिंगामा के कीर्तिचन्द्र को राहु ग्रसने वाला है । दिल्ली विश्वविद्यालय के इतिहास के प्राध्यापक श्री अम्बा प्रसाद का कहना है कि भारत की खोज का श्रेय वास्को-डिंगामा को नहीं, बल्कि एक भारतीय मल्लाह को है, जो गुजरात का निवासी था और जिसका नाम था अहमद इब्न मजीद ।

भारतीय इतिहास काग्रेस में अपना निबन्ध पढ़ते हुए प्राध्यापक महोदय ने कहा कि वास्को-डिंगामा पश्चिम अफ्रीका के तट पर अपना जहाज ले आया, क्योंकि वहाँ तक उसने पहले डियाज नामक एक अन्य अन्वेषक नाविक आ चुका था । आशा अन्तरीप हो कर वह पूर्वी अकीका में मोजास्वीक तक आ गया । वहाँ उसने कुछ अरब नाविकों

## १८ : : ओ ! मेरे राजहंस

को भर्ती किया और उनकी सहायता से मोम्बासा के निकट मालिन्दी तक पहुँच गया । आगे बढ़ने के लिए उसके पास कोई रास्ता बताने वाला नहीं था । तब उसने मालिन्दी के शेख से प्रार्थना की । शेख ने भारतीय व्यापारियों से कहा और उन भारतीय व्यापारियों ने अहमद इब्न मजीद को, जो न केवल मल्लाह था किन्तु ज्योतिष में भी निपुण था (समुद्रयात्रा के साथ ज्योतिष ज्ञान की अनिवार्यता के कारण ही तो कहीं ज्योतिष को 'सामुद्रिक' नहीं कहा गया है ।) शेख की सेवा में हाजिर किया । यदि यह भारतीय मल्लाह साथ न होता तो वास्को-डि-गामा ने निराश हो कर अपने अभियान को तिलांजलि दे दी होती और तब, भगवान जाने, उसकी क्या गति होती ! श्री अम्बा प्रसाद ने तुर्की और अरब देशों के इतिहास से भी इस तथ्य को प्रमाणित किया है ।

इससे पहले श्री जयचन्द्र विद्यालंकार तथा अन्य इतिहास-शोधक यह सिद्ध कर चुके हैं कि सारे संसार में सर्वोच्च पर्वत शिखर के नाम से माउण्ट एवरेस्ट की जो रूपाति है, उसके मूल में तत्कालीन सर्वेयर जनरल सर जान एवरेस्ट नहीं, बल्कि राधानाथ सिकदर नामक एक बंगाली युवक है जिसने यह खोज की थी कि यही शिखर सब से ऊँचा है । पर उस समय क्योंकि अंग्रेजों की हुकूमत थी, इसलिए अंग्रेज अधिकारी के नाम से उस चोटी का नामकरण कर दिया गया और सही अन्वेषक का नाम संसार जान भी नहीं पाया ।

अंग्रेजों के समय से ही यह परम्परा चली आ रही है कि दिसंबर के अन्त में 'बड़े दिनों' की छुट्टियाँ होती हैं, इसलिए अधिकांश बड़े-बड़े बुद्धिजीवी सम्मेलन उन्हीं दिनों होते हैं । कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन भी उन्हीं दिनों रखने की परम्परा उसके संस्थापक सर ए. ओ. ह्यूम के समय से चली आ रही है । इस बार भी कई महत्वपूर्ण सम्मेलन हुए । विभिन्न विषयों के विशेषज्ञ डाक्टरों का भी एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ । उसमें एक प्रसिद्ध सर्जन ने कहा कि शल्यकिया को आघुनिक युग की देन माना जाता है, पर सर्वप्रथम शल्यचिकित्सक थे आयुर्वेद के प्राणाचार्य महर्षि सुश्रूत जिन्होंने अपने ग्रन्थ 'सुश्रूत संहिता' में इस विषय का इतना सूक्ष्म विवेचन किया है कि आघुनिक-

सर्जन भी चकित हो जाते हैं ।

इतना ही नहीं, महर्षि सुश्रुत से भी पहले वेद में 'प्लास्टिक सर्जरी का वर्णन है । ऋग्वेद में वर्णन है कि जब युद्ध में विश्वला इतनी धायल हो गई कि उसकी टाँग काटनी पड़ी, तब अश्विनीकुमारों ने लोहे की कृत्रिम टाँग लगा कर उसे फिरते के योग्य बना दिया । कृत्रिम अंग-प्रत्यारोपण का यह सर्व प्रथम उल्लेख इस बात का संकेत तो है कि वैदिक युग जंगलियों का युग नहीं था ।

नेशनल बुक ट्रस्ट की ओर से हाल में एक पुस्तक निकली है—'अन्तरिक्ष के आश्चर्य' (वण्डर आफ स्पेस) । उसमें लिखा है कि राकेट बनाने की प्रेरणा यूरोप को भारत से मिली थी । मंसूर के हैदरअली और टीपू सुलतान ने अपनी सेना में एक नियमित राकेट दल रखा हुआ था । ये राकेट एक मील से लेकर दो मील तक मार करते थे और इन्हीं राकेटों की बदौलत उन्होंने अंग्रेजी सेना को पराजित किया था । १७८६ में लन्दन से प्रकाशित एक पुस्तक के अन्दर भी इन भारतीय राकेटों का उल्लेख है । बाद में इन भारतीय राकेटों की नकल पर ही यूरोप के प्रसिद्ध वैज्ञानिक विलियम कांग्रेव ने सात साल तक परिश्रम करके नया राकेट बनाया और १३,००० राकेट तैयार करके अंग्रेजी सेना की संहारक शक्ति बढ़ाई गई । जिन राकेटों और उपग्रहों की बदौलत आज मानव चंद्रमा तक पहुँचने के पश्चात मंगल और शुक्र ग्रह तक पहुँचने की तैयारी में है, उनका मूल स्थान भारत है, यह जानकर किसे आश्चर्य नहीं होगा ।

इतना ही बयों, संगणक (कम्प्यूटर) इस वैज्ञानिक युग की बहुत बड़ी उपलब्धि है । आधुनिक युग में 'स्वचालित प्रवृत्ति' (आटोमेशन) और दूर-नियंत्रण का आधार यह संगणक ही है । गृह मंत्रालय के वरिष्ठ अधिकारी श्री टी. अनन्ताचारी ने कम्प्यूटर सोसायटी के वार्षिक समारोह में सब प्रतिनिधियों के समक्ष कहा है कि विष्णु पुराण और महाभारत में संगणक का उल्लेख है और मथुराधिपति कंस ने अपने विरोधियों की गणना के लिए तथा उनके बीच में भगवान कृष्ण को पहचानने के लिए संगणक जैसे एक यंत्र का निर्माण किया था ।

दिल्ली विश्वविद्यालय के भौतिक-विज्ञान और खगोल-भौतिकी के प्राच्यापक श्री स्वदेश कुमार त्रिखा ने एक और विचित्र स्थापना की है। उनका कहना है कि जिन्हें हम आजकल आणविक अस्त्र कहते हैं, वे महाभारत-काल में 'ब्रह्मास्त्र' कहलाते थे। महाभारत के युद्ध में ऐसे आणविक अस्त्रों का प्रयोग भी हुआ था, इसका प्रमाण यह है कि जिस भूमि में यह युद्ध हुआ था उस भूमि में आज भी रेडियम-धर्मिता (रेडियो एक्टिविटी) अपेक्षाकृत अधिक पाई जाती है। उन्होंने करनाल के अमीन नामक स्थान पर और जींद के कलायत नामक स्थान पर अपने परीक्षण किए हैं। उनका कहना है कि पिहोवा में तो आज तक घरातल से नीचे चार फुट तक की गहराई तक मिट्टी लाल पाई जाती है। कुरुक्षेत्र के प्रदेश में महाभारत के युद्ध के घटित होने का यह एक और प्रबल प्रमाण है।

एक और डा. सांकलिया कहते हैं कि महाभारत का युद्ध हुआ ही नहीं, अगर हुआ भी तो बहुत छोटे पैमाने पर एक पारिवारिक युद्ध मात्र, और उसमें बिना लोहे के फलक वाले सादे बाणों का और केवल पाषाणों का ही प्रयोग हुआ, क्योंकि तब तक भारत में लौह युग का प्रवेश नहीं हुआ था।

अब तक पश्चिम के उच्चिष्ठभोजी भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग में प्रायः यह प्रवृत्ति रही है कि भारत के इतिहास को आधुनिक मापदण्ड से गौरव-हीन सिद्ध करने वालों को समान्य-शिरोमणि समझा जाए और इससे विपरीत लोगों की पोंगापन्थी। पर अब पाश्चात्य विचारों की दुर्ग-प्राचीरों से ही ऐसा नया स्वर सुनाई देने लगा है जिससे अपने पूर्वजों के प्रति आदर-बुद्धि पैदा होती है। यह नई हवा है।

आत्म-विश्वास और आत्म-गौरव की यह नई हवा चिरजीवी हो ! □

## सखि ! क्या वसन्त क्रृतुं आ गई !

छोटे-छोटे दोहों में गम्भीर भावों को भर देने के लिए विस्थात महाकवि बिहारी ने लिखा है—

कहि पठइ जिय भावती पिय आवन की बात ।

फूली आंगन में फिरै आंग न आंग समात ॥

—प्रिये ने अपने आने की मनभावनी बात कहला भेजी। वसन्त फिर क्या था, प्रियतमा आंगन में ऐसी फूली फूली फिरने लगी कि उसके अंग अपने अंगों में नहीं समा रहे थे।

कौन है वह प्रियतम और कौन हैं प्रियतमा ! भटकने की जरूरत नहीं। अपने चारों ओर दृष्टिपात किया तो लगा कि वसन्त है प्रियतम और वनस्थली है प्रियतमा ।

कहीं समांलोचकप्रवर इस कल्पना को दूर की कौड़ी न कह बैठे, इसलिए प्रमाण देना आवश्यक है। शायद कवि से इतर किसी अन्य व्यक्ति का प्रमाण ग्रहण न हो, इसलिए कवि का प्रमाण देना होगा। संस्कृत के एक कवि ने लिखा है—

जगी विवाहावसरे वनस्थली—वसन्तयोः कामदुताश-साक्षिणि ।

पिकद्विजः प्रीतमना मनोरमं मुहुर्मुहर्मगलमन्त्र-मादरात् ॥

—जब विवाह होता है तब अग्नि को साक्षी करके यज्ञ की वेदी पर वर और वधू का ग्रन्थि-बन्धन किया जाता है। पुरोहित मंत्र पाठ करता है, महिलाएँ मंगल गीत गाती हैं। जब वनस्थली और वसन्त का विवह होने लगा, तब अग्नि-वर्णी किञ्चुकों के माध्यम से कामदेव साक्षी बने, पक्षियों ने मंत्र पाठ किया और कोयल ने मंगलगीत गाया—और यों वनस्थली और वसन्त का विवाह संपन्न हुआ ।

कवि-कुल-तिलक कालिदास ने वसन्त के वनस्थली में भी 'पदार्पण का रोचक वर्णन किया है—

कुसुम जन्म ततो नवपलवाः तदनुषट्पद कोकिलकूजितम् ।

इति यथाक्रममाविरभूत्मधुः द्रुमवतीमवर्तीर्य वनस्थलीम् ॥

—पहले फूलों का जन्म हुआ—चारों और फूल ही फूल, फिर नई-नई कोपलें निकलीं, फिर भ्रमरों का वृन्दवादन प्रारंभ हुआ, फिर कोयल ने शहनाई बजाई और वसन्त महोदय पादपाच्छादित वनस्थली में ढूँढ़े की घोड़ी से उतर पड़े ।

पीराणिक कथानक के अनुसार महादेव शिव ने जब क्रोध में आकर कामदेव को भस्म किया तो उसका मणि-निर्मित धनुष पाँच टुकड़ों में विभक्त हो गया । उस टूटे हुए धनुष की मूठ से चम्पा का फूल पैदा हुआ, हीरे का बना नाह स्थान वकुल पुष्प हुआ, इन्द्रनील मणी शोभित कोटि-देश पाटल पुष्प में परिवर्तित हो गया, नाह और मूठ का मध्यवर्ती स्थान—जो चन्द्रकान्त मणि से निर्मित था—जाती-पुष्प बना और मूठ के ऊपर का तथा सिरे के नीचे का हिस्सा—जिसमें विद्रुम मणि जड़ी थी—मल्लिका के रूप में पैदा हुआ । तबसे कामदेव का वह धनुष पुष्पमय होकर इस पृथ्वी पर विराजमान है ।

कुछ लोग पाँच इन्द्रियों के पांच विषयों अर्थात् रूप, रस, गन्ध-स्पर्श और शब्द को कामदेव के पांच बाण बताते हैं । अरवि कुछ लोग (कमल), अशोक, आम, नवमलिका और नीलोत्पल को काम का पुष्पमय बाण मानते हैं ।

परन्तु वसन्त और वनस्थली के इस विवाह में जितना महत्व कामदेव की हुताशन-साक्षी का है, उससे किसी भी तरह कम महत्व कोयल के गीतों और उसकी शहनाई का नहीं है—वह तो वसन्त की दूती है—वर महोदय के आगमन से पहले ही घर-घर इस विवाह समारोह की निमंत्रण-पत्रिका बाँट आती है । उसके बिना समारोह की सूचना ही कैसे मिलेगी । जैसे आजकल ध्वनि विस्तारक यंत्र के बिना कोई समारोह नहीं होता, उसी प्रकार बिना कोयल के गीतों के वसन्त ऋतु में प्रकृति का कोई आयोजन नहीं होता ।

कालिदास ने कोकिल को वसन्त और मदन दोनों का साधन माना है। कवि-समय है कि कोकिल केवल वसन्त में ही बोलते हैं। यों—

काकः कृष्णः पिकः कृष्णाः

को भेदः पिक काकयोः ।

प्राप्ते वसन्त समये

काकः काकः पिकः पिकः ॥

—कौआ भी काला है और कोयल भी काली है, इसलिए कौए और कोयल में अन्तर ही क्या है ? परंतु जब वसन्त ऋतु आती है, तब साफ-साफ पता लग जाता है कि कौआ कौआ है, और कोयल कोयल है।

कोयल का वसन्त के साथ इतना अविनाभाव सम्बन्ध है कि कई वैज्ञानिकों तक को यह भ्रम हो गया है कि शीत काल में यह पक्षी देश छोड़कर कहीं अन्यत्र चला जाता है और फिर वसन्त में इस देश में वापिस लौट आता है। किन्तु द्विस्लर ने काफी खोजबीन के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि कुछ अत्यन्य शीतल स्थानों को छोड़कर कोकिल प्रायः सारे साल भारत में पाया जाता है और चुपचाप पत्रान्तराल में छिपकर काल-यापन करता रहता है। यह सच है कि ग्रीष्म और वर्षा ऋतु में भी कोकिल बोला करता है (संस्कृत के कवियों ने कोकिल को प्रायः पुलिंग ही वर्णन किया है और उसे ‘पुंस्कोकिल’ कहा है), पर उसके स्वर में जैसी मधुरता और मादकता वसन्त ऋतु में आती है, वैसी किसी ऋतु में नहीं आती।

हाँ, वन के अधिष्ठाता ने वन में वसन्त के आगमन की घोषणा कर दी है। अधिऋृत रूप से शीत के आपात काल की समाप्ति भी घोषित है। और इस बार गणतंत्र दिवस के लगभग साथ-साथ बल्कि उससे भी पहले, वसन्तपंचमी आ रही है। पर अभी तक हवा ठन्डी है, शीत प्रकोप से लोग मर रहे हैं और वातावरण में चारों ओर उत्सुक आँखें देख रही हैं कि वसन्त कहाँ है—अयोग्यकि कोयल की आवाज पर अभी तक सेसंर है। जिगर मुरादावादी ने कहा है—

२४ :: ओ ! मेरे रांजहंस

इस वज्मे हकीकत की  
हकीकत मैं क्या कहूँ ।  
नगमों का तलातुम तो है  
आवाज नहीं है ॥

इस संगीत-गोष्ठी की वास्तविकता का वर्णन मैं क्या करूँ । यहाँ  
रागों की चहल-पहल तो है, पर राग कहीं नहीं है ।

बिना कोयल के पंचम स्वर के वसन्त कैसा ? सारा वन कोयल  
की आवाज की प्रतीक्षा में है और वन के पक्षी कह रहे हैं—

तायरे जेरे याम के  
नाले तो सुन चुके हो तुम ।  
यह भी सुनो की नालाए—  
तायरे याम और है ।

—पिजरे में बन्द पक्षियों का रुदन तो तुम बहुत सुन चुके हो, अब  
एक आजाद पक्षी की भी आवाज सुनो ।



## पुरानी पीढ़ी : नई पीढ़ी

भारत ने सन १९४२ में गाँधी के नेतृत्व में आजादी की आखिरी लड़ाई लड़ी। अंग्रेजी हकूमत ने सब नेताओं को पकड़ कर जेल में डाल दिया। गाँधी जी को पूना के आगा खाँ महल में नजरबन्द किया गया।

सन ४४ में लगातार ज्वर-ग्रस्त रहने के कारण गाँधी जी का स्वास्थ्य इतना खराब हो गया कि सरकार ने घबराकर उन्हें छोड़ दिया। तब वे बम्बई के जुहू नामक स्थान पर स्वास्थ्य-सुधार के लिए रहने गए। डाक्टरों ने उन्हें पूर्ण विश्राम की सलाह दी और मूलाकातियों का मिलना भी बन्द कर दिया।

जिस बंगले में गाँधी जी ठहरे थे उसके द्वार पर श्रीमती सरोजिनी नायडू ने स्वयं प्रहरी का काम संभाला, ताकि गाँधी जी के विश्राम में कोई बावधान न पहुंचे। एक दिन सबेरे दस बारह वर्ष का साँवला-सा एक दुर्बल शरीर का गरीब बालक आया और उसने श्रीमती नायडू को प्रणाम कर अन्दर जाने की अनुमति माँगी। श्रीमती नायडू ने बालक को समझाया कि गाँधी जी की तबियत ठीक नहीं है और डाक्टरों ने उनसे मिलने पर पावन्दी लगा रखी है।

बालक ने कहा कि मैं भील भर पैदल चल कर बापू के दर्शन करने आया हूँ और उन्हें कुछ फल भेट करना चाहता हूँ, बापू कमज़ोर हो गए हैं न, इन ताजे-भीठे भलों से उन्हें आराम हो जाएगा। श्रीमती नायडू ने जब पूछा कि ये फल खरीद कर लाए हो या माँग कर, तब बालक ने आहत होकर कहा—‘न मेरे माँ-बाप भीख माँगते हैं, न मुझे उन्होंने भीख माँगना सिखाया है। मैंने स्वयं भेहनत-मजदूरी करके जो

## २६ :: ओ ! मेरे राजहंस

पैसे कमाए थे, उन्हीं से ये फल खरीद कर बापू को भेट करने आया हूँ।'

बालक की बेबाकी से श्रीमती नायडू का दिल पिघल गया और उन्होंने उसे अन्दर जाने दिया, साथ ही कह दिया—'बापू से बोलना मत, फल देकर तुरन्त आ जाना।'

बालक प्रसन्नता से उछलता हुआ अन्दर गया, बापू के चरणों में प्रणाम किया और पोटली खोल कर ताजे संतरे, अंगूर और सेब बापू के चरणों के पास रख दिए और वापिस मुड़ चला।

बापू ने उसे आवाज देकर बुलाया। उसका नाम-धाम पूछा। बालक चुप। फलों के लाने का कारण पूछा। बालक फिर चुप। पैसे कहाँ से आए—पूछा। फिर चुप्पी। बापू ने कहा—'बेटा ! बोलते क्यों नहीं, बोलने में तुम्हें कोई कठिनाई है क्या ?' तब बालक ने कहा—'बापू ! मैं गँगा नहीं हूँ, पर मैं द्वार पर बैठी माता जी को बचन देकर आया हूँ, कि आप से एक शब्द भी न बोलूँ।'

'पर इतने फल खरीदने के लिए तुम्हारे पास पैसे कहाँ से आए ?'

'बापू जी ! मैं सबेरे-शाम एक बाग में माली के साथ काम करता हूँ। दिन में मजूर-शाला में पढ़ने जाता हूँ। पिता जी कहते थे कि फल खाने से बीमार जल्दी अच्छा होता है, इसलिए हफ्ते भर की मजदूरी से जितने पैसे मिले, उससे ये फल लाया हूँ—इनके खाने से आप जरूर अच्छे हो जाएंगे।'

बालक की अबोध आस्था से बापू भी द्रवित हो गए और उन्होंने प्यार से उसकी पीठ थपथपाते हुए कहा कि मेहनत के पैसों से खरीदी हुई तुम्हारी यह भेट मेरे लिए सब से कीमती भेट है। भगवान करे, तुम सदा जीवन में अपनी मेहनत की ही रोटी खाओ और सदा सुखी रहो।'

बापू के बलिदान-दिवस पर अकस्मात् यह घटना स्मृति-पट पर उत्तर आई और सहज ही पुरानी पीढ़ी और और नई पीढ़ी के संगम का चित्र, आँखों के सामने उभर गया। लगा कि यह ऐतिहासिक घटना भी कोई प्रतीक्षात्मक अर्थ अपने में छिपाए हैं।

नए और पुराने का विवाद नया नहीं है—न ही नई पीढ़ी के

विचार-भेद की बात नई है। दोनों अपने-अपने स्थान पर खूंटों की तरह गड़ी हैं और अपने को ठीक तथा दूसरे को गलत समझने की खुशफहमी में मुब्तिला हैं। पर जैसे अमीरी को देखे विना गरीबी का सही अहसास नहीं होता, या सौन्दर्य को पास से देखे विना कुरुपता का बोध नहीं होता, वैसे ही नई पीढ़ी और पुरानी पीढ़ी को एक साथ रखे विना उनका सही मूल्यांकन सम्भव नहीं। सफेद रेखाएं काले बोर्ड पर ही ध्यान खींचती है।

एक आदमी राम का भक्त था। उसने अपने दोनों कानों के पास घण्टे लटका लिए। वे दिन-रात उब घण्टों को बजाता रहता था कि राम के सिवाय किसी अन्य देवता का नाम कान में न पड़ जाए। जैसे पुरानी पीढ़ी ने अपने काम में घण्टे लटका रखे हैं, वैसे ही नई पीढ़ी ने भी। दोनों घण्टाकर्ण बनी इस कोशिश में रहती हैं कि अपनी अभीष्ट आवाज के सिवाय कोई और आवाज कान में न पड़े। आधुनिकता और ज्ञान का जो नया विस्फोट हुआ है, पुरानी पीढ़ी उसे नकारना चाहती है और नई पीढ़ी पुरानी पीढ़ी के अस्तित्व को आँखों से ओझल कर देना चाहती है। ये दोनों ही स्थितियाँ खतरनाक हैं।

नई पीढ़ी के पास अपनी जड़ें नहीं हैं। जड़-हीन पीढ़ी अगर फूल लाएगी भी तो प्लास्टिक के या कागज के। वे असली नहीं होंगे। पुरानी पीढ़ी के पास केवल जड़ ही जड़ है, नए फूल खिलाने की सामर्थ्य नहीं। फूल-हीन जड़ कितनी वितृष्णा पैदा करती है! रोज नए-नए सुन्दर फूलों को जन्म देने में ही जड़ की सार्थकता है।

जो फूल पश्चिम में या सारी दुनिया में खिल रहे हैं, वैसे हमारे यहाँ भी खिलें, यह सौभाग्य की बात है, पर उधार के फूलों से हम अपना गुलदस्ता सजाकर बैठ जाएं, तो इससे हमारी दीनता कुछ समय के लिए भले ही छिप जाए, पर मिट नहीं सकती। पुरानी पीढ़ी जड़ों को पकड़े बैठी है और नई पीढ़ी जड़ों को नकार कर फूलों को पकड़े बैठी है—फिर भले ही वे फूल कहीं से भी आए हों। पर क्या पुराना और नया दो विरोधी चीजें हैं? क्या पुराना ही विकसित होकर नया नहीं होता? क्या बाप ही बेटे के रूप में नया जन्म नहीं

लेता ? पर आज बाप और बेटा दो ध्रुवों पर हैं—एक उत्तर है तो दूसरा दक्षिण । क्या इन दोनों ध्रुवों में संघर्ष अनिवार्य है ? नहीं, अगर संघर्ष है तो बाप और बेटे का सम्बन्ध नहीं रहा । यह सम्बन्ध ही इस बात की निशानी है कि इन दोनों में कहीं सम्बन्ध है, संगीत है, तालमेल है ।

पर इस संगीत को समझ कर उसे बनाए रखना आसान नहीं है । जैसे सरकस में नट रस्सी पर चलते हुए अपना संतुलन बनाए रखता है, वैसा ही संतुलन यहाँ भी आवश्यक है । रस्सी से गिरना बहुत आसान है, क्योंकि उसके लिए संतुलन का श्रम या दक्षता दरकार नहीं । कठिन है तो अपने को साध कर बिना दाएं या बाएं गिरे, उस पतली रस्सी पर न केवल आगे बढ़ना, बल्कि कलाबाजी दिखाना । यह दक्षता न हो तो दर्शकों से प्रशंसा की आशा ही व्यर्थ है ।

चित्रकारों ने अपनी तूलिका से सुन्दर स्त्रियों के चित्र इतनी अधिक मात्रा में बनाए हैं कि अब सौन्दर्य के किसी नए कोण को खोजना मुश्किल है । तब चित्रकार ने अपनी मौलिकता सिद्ध करने के लिए ऐसी सुन्दरी का चित्रण किया जिसके हाथ की जगह टाँग और कान की जगह आँख थी । तब मौलिकता तो आ गई, पर वह स्त्री नहीं रही । पिकासो को अपनी इस मौलिकता के लिए अपार यश मिला । उसकी साठवीं वर्षगांठ पर किसी प्रशंसक ने कहा—‘क्या आप जैसा मौलिक कलाकार संसार में और कोई है ?’ पिकासो ने कहा—‘आई वाज जस्ट विफूलिंग द मैनकाइण्ड’—अर्थात् मैं तो लोगों को बेवकूफ बना रहा था । पिकासो के इस एक कथन ने सारे आधुनिक मौलिकतावादियों को कठिनाई में डाल दिया । पुराने कवियों को स्त्री के चेहरे में चाँद और कमल तो दिखे, पर छिपकली कभी नहीं दिखी । आधुनिक कवि को यह भी दिख गई । उसकी विद्वतापूर्ण व्याख्या करने वाले समीक्षक भी मिल गए । असल में तो जब केवल नए को सही मान कर मौलिक बनने का प्रयत्न किया जाएगा तो वह प्रयत्न सदा ‘एवसडिटी’ की ओर ही ले जाएगा ।

दो मुसाफिर जंगल से गुजर रहे थे । उनमें से एक लंगड़ा था,

दूसरा अन्धा । एक लंगड़ाता आगे को बढ़ रहा था, दूसरा लाठी से रास्ते को टटोलता-टटोलता । जंगल में अचानक आग लग गई । दोनों को चिन्ता हुई—आग से बच कर सुरक्षित स्थान पर कैसे पहुँचे ! विकलांग होने के कारण दोनों असमर्थ । पर समय पर सुमति ने काम दिया । अन्धे ने लंगड़े से कहा कि तुम मेरे कन्धे पर बैठ जाओ, तुम्हारी आँखें ठीक हैं इसलिए तुम रास्ता बताते जाओ, मेरी टाँगें ठीक हैं, इसलिए मैं तुम्हारे निर्देशानुसार तेजी से भागता जाऊँगा । लंगड़ा राजी हो गया । दोनों मिलकर एक हो गए और सही-सलामत संकट से पार हो गए ।

पुरानी पीढ़ी के पास आँख है, दौड़ने के लिए पाँव नहीं । नई पीढ़ी के पास दौड़ने के लिए सशक्त पाँव हैं, पर आँख नहीं । बिना एक हुये जंगल से कैसे पार होंगे !



## जीवन है नाम चुनौती का !

भारत के बहुत बड़े चित्रकार हुए हैं—नन्दलाल बोस । अपने यौवन के प्रारम्भ में वे अवनीन्द्र नाथ ठाकुर के पास चित्रकला सीखने गए । कुछ अर्से बाद वे श्री कृष्ण का एक चित्र बनाकर अपने गुरु के पास ले गए । उस समय रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी वहाँ बैठे हुए थे । उन्होंने भी उस चित्र को देखा और देखकर मुग्ध हो गए । इस नवयुवक चित्रकार की मन ही मन प्रशंसा कर ही रहे थे कि गुरु ने उस चित्र को सड़क पर फेंक दिया और शिष्य को सम्बोधित करके कहा—‘तुमने क्या ऊट-पटांग चित्र बनाया है । तुमसे बढ़िया चित्र तो बंगाल के वे देहाती पटिये बनाते हैं जो कृष्ण जन्माष्टमी के दिन तथा अन्य अवसरों पर दो-दो पैसे में कृष्ण का चित्र बनाकर बेचा करते हैं ।’

नन्दलाल बोस के दिल को चोट तो लगी, पर गुरु के प्रति अवक्षा का भाव मन में नहीं आया । गुरु के चरणों में प्रणाम किया, वहाँ से चल दिए और पटियों की खोज में बंगाल के गाँवों में खो गए । पर रवि बाबू का मन सचमूच चोट खा गया । आक्रोश और कुछ-कुछ रोष के साथ अवनि बाबू से कहने लगे—‘यह तुमने क्या किया ? मैंने आज तक कृष्ण के जितने भी चित्र देखे हैं, यह उनमें सबसे सुन्दर था । तुमने उसे रही कागज की तरह सड़क पर फेंक दिया । उस होनहार युवक की प्रतिभा का इतना अनादर, सो भी गुरु होकर !’ यह कह कर उन्होंने अवनि बाबू की आँखों की ओर देखा । उन आँखों से गंगा-यमुना की धारा वह रही थी ।

अवनीन्द्रनाथ ने कहा—‘जानता हूँ, चित्र बहुत बढ़िया था । इतना सुन्दर चित्र शायद मैं भी न बना सकूँ । पर इस युवक में अभी

और संभावनाएं छिपी हैं। उन संभावनाओं को प्रकाश में लाने के लिए चुनौती चाहिए। अगर मैं अभी से प्रशंसा कर दूँ तो उस चुनौती का का अवसर कभी नहीं आएगा और उसका विकास अवश्य हो जाएगा। उसके अन्तस में जो कुछ छिपा है उसे बाहर लाने के लिए अभी मैं आलोचना करूँगा और रोड़गा, रोड़गा और फिर आलोचना करूँगा।'

तीन महीने बाद में नन्दलाल बोस लौटकर आए। गरीब पटियों की तरह ही गरीबी का बाना धारण किए—कपड़े फटे और दयनीय अवस्था। गुरु के चरणों में श्रद्धासहित प्रणाम किया और कहा—‘गुरु-वर! आप ठीक कहते थे। मेरे चित्र में रंग और रेखाएं तो थीं, चित्र-कला से सम्बद्ध और बारीकियां भी शायद उसमें रही हों, पर पटियों वाला प्रेम और आस्था उसमें नहीं थी। आपने वह चित्र फेंक दिया, इसके लिए आपका बहुत कृतज्ञ हूँ।’

मानव-जीवन में कितनी सम्भावनाएं छिपी हैं, इसकी कोई सीमा नहीं है। पशु से लेकर देवत्व तक की सारी सीढ़ियाँ इसी मानवीय चोले में से होकर गुजरती हैं। शर्त एक ही है—उसके लिए चुनौती चाहिए। विना चुनौती के वे सारी सम्भावनाएं सोई रहती हैं। संसार में जितने पैगम्बर या अवतार हुए हैं, वे सब अपने-अपने समय की चुनौतियों के उत्तर हैं। धर्मशास्त्रों की परिभाषा में वे अवतार और पैगम्बर कहलाते हैं, पर इतिहास और समाज-शास्त्र उन्हें महापुरुष कहता है। ‘सम्भवामि युगे युगे’—केवल श्रीमद्भगवद्गीता का ही सिद्धांत नहीं है, वह, इतिहास का भी सिद्धांत है। हरेक युग की अपनी चुनौतियाँ होती हैं, जन-सामान्य उन चुनौतियों को न तो पहचान पाता है न उनका सामना करने की सामर्थ्य जुटा पाता है। पर जो तेजस्वी पुरुष उन चुनौतियों को पहचान कर उनका उत्तर देने के लिए मैदान में कूद पड़ता है, उस की ओर जनता दांतों तले अंगुली दबाकर देखती है। कदम कदम पर आने वाले संकटों से जब उसके ऊर्जस्तिवत प्राण पराजय स्वीकार नहीं करते, तो लोगों का आश्चर्य प्रशंसा में बदल जाता है और वे उसे ‘महा-पुरुष’ कहकर स्वयं उसका अनुगमन करने में अपने को कृतकृत्य मानने लगते हैं।

संसार में ज्ञान-विज्ञान की जितनी भी उन्नति हुई है उस सबके मूल में भी वही चुनौतियों वाली वात है। मनुष्य के मन में कुछ प्रश्न पैदा होते हैं, कुछ प्रश्न का उत्तर देने के लिए वह अपनी बुद्धि का प्रयोग करता है। फिर कुछ नए प्रश्न पैदा होते हैं, वह फिर उनका उत्तर देने का प्रयत्न करता है—और यों ज्ञान-विज्ञान की दृष्टि से मानव कोष में वृद्धि होती चली जाती है। एक वर्ग, बल्कि कहना चाहिए—बहुत बड़ा वर्ग ऐसा भी है जिसके सामने कभी कोई प्रश्न चुनौती बन कर नहीं आता, इसलिए वह उत्तर देने का भी प्रयत्न नहीं करता। कभी-कभी ऐसा लगता है कि संसार में नया प्रश्न पैदा करना ही सबसे कठिन काम है। एक बार प्रश्न पैदा हो जाए, तो उसका उत्तर भी जन्म लेगा ही। प्रश्न नहीं तो उत्तर भी नहीं। शायद उत्तर क्षण-भंगुर है, प्रश्न चिरजीवी। एक आधुनिक कवि का कहना है—

प्रश्न है, उत्तर नहीं है,  
क्योंकि मैं नश्वर नहीं हूँ।

यों सोचने बैठें तो क्या मनुष्य जीवन ही, जन्म से लेकर मृत्युपर्यन्त, क्षण-क्षण चुनौतियों से भरा नहीं है? मां के गर्भ से सुरक्षित स्थान और कौन-सा होगा? न खाने की चिंता, न पहनने की, न समाज की, न अपनी न पराई। पर उस सुरक्षित स्थान को छोड़कर बाहर आना पड़ता है और आते ही चिंताओं और चुनौतियों का अम्बार शुरू हो जाता है पर मूर्ख मनुष्य कितना भाग्यशाली है कि वह इन चिंताओं और चुनौतियों को देखकर भी नहीं देखता। नीतिकार कहते हैं—

यश्च मुढ़तमो लोके  
यश्म बुद्धेः परां गतः ।  
द्वावेव सुखमेघेते  
क्लिश्यत्यन्तरितो जनः ॥

—दुनिया में दो ही आदमी सुखी रहते हैं—या तो निपट मूर्ख या बुद्धि की पराकाष्ठा को प्राप्त। बाकी बचे बीच के सब मानव तो क्लेश ही क्लेश भोगते हैं। मुश्किल यही है कि बुद्धि-शून्यता की अति और बुद्धि-सम्पन्नता की अति—जगत् में दोनों ही दुर्लभ है। सुलभ है तो केवल,

## जीवन है नाम चुनौती का :: ३३

बीच का आदमी—इसकी किस्मत को क्लेश से कौन बचाए ! शायद  
उसी बीच के आदमी को लक्ष्य करके शायर ने कहा है—

जिन्दगी क्या मुफलिस की कबा है जिसमें,  
हर घड़ी दर्द के पैबन्द लगा करते हैं ?

आगा शोरिश कश्मीरी ने लिखा है—

चन्द आँसू, चन्द आहें,  
चन्द नाले, चन्द जरूम ।  
आए दिन की कशमकश  
का यह सिला है दोस्तो ।

पर नहीं, शायरों का दिल कुछ अधिक नाजुक होता है, इसलिए  
फूल की कली जब चटकती है तब भी उनके जिगर में दरार पैदा हो  
जाती है। जिन्दगी केवल दर्द नहीं है, वह चुनौती है, चुनौती। और  
यह चुनौती मानव में छिपी अनन्त संभावनाओं को ललकार रही है।  
जिसने इन चुनौतियों को पहचानकर खम ठोक दी, उसी के मुख से यह  
वाणी निस्सृत होगी—

इस सदन में  
मैं अकेला ही दिया हूँ।  
मत बुझाओ,  
जब मिलेगी,  
रोशनी मुझ से मिलेगी ॥

## शिव के रूपक का एक रूप

एक बार सृष्टि-रचनियता ब्रह्मा और सृष्टि के पालनकर्ता विष्णु में इस बात पर विवाद हो गया कि दोनों में कौन बड़ा है। महिमा दोनों में से किसी की भी कम नहीं थी। और जब कोई अपने बड़प्पन को अपनी ही आँख से आँकना चाहे तो उसे 'हम च मा दीगरे नेस्त'—अपने सिवा कोई और नजर ही नहीं आता। जब ब्रह्मा और विष्णु आपस में मिलकर किसी निर्णय पर नहीं पहुँच सके तो देवाखिदेव महादेव के दरबार में हाजिर हुए। महादेव भी असंमजस में—दोनों में से किसे बड़ा और किसे छोटा कहें। तब एक को अपने सिर का पता लगाने को भेजा और दूसरे को अपने पांव का, और कहा कि जो पहले लौट आएगा, वही बड़ा और विजयी माना जाएगा। पता नहीं कितनी दशाविद्यों और शताविद्यों तक यह खोज चलती रही। एक को कहीं शिव के सिर का अन्त नहीं मिला और दूसरे को शिव के चरणों का। आखिर दोनों निराश होकर लौट आए और दोनों ने वह जान लिया कि हम दोनों में से कोई बड़ा नहीं है, बड़प्पन के असली अधिकारी तो शिव हैं।

इसी प्रकार एक बार गणेश और कार्तिकेय में किसी बात पर विवाद हो गया तो वे भी अपने पिताश्री महादेव के पास पहुँचे। शिवजी ने वहाँ भी कुछ-कुछ इसी प्रकार की शर्त रख दी—दोनों में से जो सारी दुनिया को नापकर पहले लौट आएगा वही विजयी माना जाएगा और उसी की बात सत्य होगी। शक्ति, स्वास्थ्य और सौन्दर्य के प्रतीक कार्तिकेय तो अपने वाहन मयूर पर बैठे और चल दिए दुनिया का ओर-छोर नापने। पर गणेश जी लम्बोदर, गजबदन और मोदक प्रेमी, वाहन भी छोटा-सा मूषक जैसा तुच्छ प्राणी। दौड़ में जीतने के लिए सब चीजें

ही बाधक । पर गणेश जी बुद्धि-सदन । तुरन्त एक बात उनके दिमाग में आई । वे अपने वाहन मूहक पर सवार हुए और बड़ी बेफिकी से खरामा-खरामा अपने पिता की परिक्रमा करके सामने आकर खड़े हो गए । शिव ने कहा—दुनिया की परिक्रमा करने के लिए कहा था न ! गणेश बाल-सुलभ मुस्कान से बोले—आप ही तो विश्वरूप हैं, आपकी परिक्रमा से विश्व की परिक्रमा हो गई !

निससंदेह, किसी शिव-भक्त ने शिव की महिमा की अत्युक्तिपूर्ण वर्णन के लिए इस प्रकार के कथानकों की सृष्टि की होगी । यों नाना सम्प्रदायों तथा अनुयायियों ने अपने-अपने इष्टदेव को बड़ा और अन्य के इष्टदेवों को छोटा सिद्ध करने के लिए इस प्रकार के आख्यानों की रचना की है और उनसे पुराण भरे पड़े हैं । पर यह साहित्यिक कल्पना-विलास सर्वधा निरर्थक नहीं है । पौराणिक वाड्मय को विष-संपूर्वत अन्न की तरह त्याज्य बताने वाले मनीषियों की भी कमी नहीं है । पर विष भी कभी-कभी अमृत का काम करता है । हाँ उसके लिए विष-वैद्य की योग्यता चाहिए ।

बात तो शिव की चल रही है । शिवरात्रि के दिन भक्तों द्वारा पूजित शिव के भी इतने रूप हैं कि तत्त्व चिन्तक भी भ्रमित हो सकते हैं । शिव के सांगोंपांग रूप का वर्णन कठिन है, पर एक संस्कृत के कवि ने गागर में सागर की बात को चरितार्थ करते हुए लिखा है—

पिनाक फणि बालेन्दु—भस्म मन्दाकिनी युता ।

पवर्गरचिता मूर्तिः अपवर्ग प्रदास्तु मः ।

—शिव के हाथों में पिनाक नामक धनुष है, कण्ठ में सांपों की माला है, मस्तक पर बाल-चन्द्रमा है, शरीर पर भस्म है और सिर पर देवनदी गंगा है—इस प्रकार शिव की मूर्ति पवर्ग से रचित है (पिनाक-प, फणि-फ, बालेन्दु-ब, भस्म-भ, मन्दाकिनी-म; प-फ-ब-म-पवर्ग) । यह पवर्ग रचित मूर्ति हमें अ-पवर्ग (मोक्ष) प्रदान करे ।

भारतीय मनीषा ने कभी धर्म और राष्ट्र को अलग नहीं किया । दोनों एक-दूसरे में ओत-प्रोत हैं । पवर्ग से जो मूर्ति बनाई गई है, वह कदाचित किसी व्यक्तिविशेष की उतनी द्योतक नहीं, जितनी कि एक

राष्ट्र की द्योतक है। क्या शिव का रूपक प्रकारान्तर से भारत का ही प्रतीक नहीं है ? धनुष-बाण के लिए, साँपों के लिए, अमल घबल चाँदनी के लिए, साधुओं के शरीर पर अहनिश रमी रहने वाली भस्म के लिए और भगवती भागीरथी के अस्तित्व को चरितार्थ करने के लिए सारे संसार में कौन-सा देश है ? भारत ही तो ।

पौराणिक आख्यान के रचनाकार ने आलंकरिक भाषा में कहा कि शिव के सिर से गंगा निकलती है। इसी बात को उलट कर यदि यों कह दिया जाए कि जिसके सिर से गंगा निकलती है, वही शिव है, तो यह एक ऐसा भौगोलिक तथ्य है जिससे तुरन्त भारत का मानचित्र सामने आ जाता है। हिमालय को इस महादेश ने अपने मस्तक पर मुकुट की तरह धारण किया है और उसी से गंगा निकलती है। इसलिए जिसके मस्तक से गंगा निकलती है, यदि वही शिव है, तो वह शिव भारत के सिवाय और कुछ नहीं है ।

रूपक यहीं समाप्त नहीं होता। शिव की कथा में यह भी सम्मिलित है कि जब अपने पिता द्वारा अपने पति को अपमानित किए जाने से खिल्ल होकर सती पार्वती ने यज्ञ-कुण्ड में कूदकर आत्मबलिदान कर दिया, तब शिव पार्वती के शव को कंधे पर उठाए उठाए सारे संसार में विक्षिप्त की तरह धूमते रहे। सती के अंग कट-कटकर गिरते रहे, पर जब तक अंतिम अंग अंश भी कट कर पृथ्वी पर नहीं गिरा पड़ा, तब तक शिव ने उस शव को कन्धे से उतारा नहीं। सती के अंग जहाँ-जहाँ गिरते गए वहीं तीर्थ बनता गया और इस प्रकार सारे भारतवर्ष में द्वादश ज्योतिर्लिंगों की स्थापना हो गई। ये ज्योतिर्लिंग भारत के पूर्व-पश्चिम-उत्तर-दक्षिण चारों कोनों में छाए हुए हैं। इस आख्यान में क्या केवल सती की महिमा है ? क्या केवल दाम्पत्य-प्रेम की पराकाष्ठा है ? तीर्थों के माध्यम से सारे भारत की एकता का आह्वान नहीं है ?

शिव सम्बन्धी आख्यानों में किस प्रकार राष्ट्रीय एक्य की परम्परा अनुस्यूत है—इसका एक उदाहरण और देखिए। शिवजी हैं कैलाश पर अविष्ठित और पार्वती है कन्याकुमारी में प्रतिष्ठित। कैलाश है भारत की उचरी सीमा, और कन्याकुमारी है भारत की दक्षिणी सीमा। जन-

मानस में सीमा की अविच्छेद्यता जागृत करने के लिए ही राष्ट्र की इन उत्तर-दक्षिण की सीमाओं पर देवताओं की प्रतिष्ठा की गई है। कन्या-कुमारी में बैठी पार्वती तपस्या कर रही है। तपस्या का हेतु क्या है?

कोटि जनम ले रगर हमारी ।

वरउँ शम्भु न तौ रहों कुमारी ॥

—जन्म-जन्मान्तर से समुद्र-तट स्थित कुमारी पार्वती साधनारत हैं— केवल इसलिए कि उसे भारत के ठेठ उत्तर में स्थित कैलाश-वासी शिव-शम्भु को वर के रूप में प्राप्त करना है, अन्यथा वह कुमारी ही रहेगी। यह आख्यान क्या है? उत्तर व दक्षिण में एक-दूसरे के आधिपत्य का आतंक फैलाने वाले क्या कभी भारत की भावनात्मक एकता के इस प्रकार के अद्भुत आख्यानों के मर्म को समझने का प्रयत्न करेंगे।

वेद ने राष्ट्रदेवी की कल्पना करते हुए उसकी परिभाषा की थी—

अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम् ॥

—राष्ट्र के निवासियों को परस्पर एकता के सूत्र में आबद्ध करने वाली मैं राष्ट्रदेवी हूँ। इतिहास, पुराण, दर्शन, साहित्य, अध्यात्म—ये सब जिस संस्कृति के अंग हैं वह—

सा नो संस्कृति विश्ववारा ।

—हमारी संस्कृति विश्व द्वारा वरणीय है, विश्व-वरेण्य है। राष्ट्रीय ऐक्य उस संस्कृति की पहली शर्त है। जो संस्कृति राष्ट्र को ऐक्यबद्ध नहीं कर सकती, वह कभी विश्ववारा नहीं हो सकती। शिव का रूपक उसी का एक प्रतीक है।



## भारत माता की जय

एक पत्रकार मित्र हाल में ही पूर्वी अफ्रीका की यात्रा करके लौटे थे। वहाँ के संस्मरण सुनाते हुए बताते थे कि केन्या के राष्ट्रपति जोमो केन्याटा ने भी महात्मा गांधी और भारतीय स्वतंत्रता-संग्राम से प्रेरणा लेकर अपने देश की आजादी के लिए संघर्ष किया था और अन्ततः केन्या दसेक वर्ष पूर्व आजाद हो गया। केन्याटा अपने देश में गांधी जी की तरह ही लोकप्रिय थे। गांधी जी की स्मृति में उन्होंने एक सड़क का नाम भी महात्मा गांधी रोड रखा है। लोग अब भी उनका आदर करते हैं, परन्तु अब यह आदर मन से उतना नहीं, जितना आंतक के कारण है। केन्याटा ने शासन की प्रणाली तो लोकतंत्रीय स्वीकार की है, पर स्वभाव और व्यवहार उनका इसके विपरीत है। वे अपने समूचे देश को वे स्विट्जरलैंड की तरह खुबसुरत बनाना चाहते हैं और इसके लिए उन्होंने मोम्बासा से मनरानी तक ३५ किलोमीटर के मार्ग में लगभग ७०-८० होटल बना दिए हैं। इन्हीं में से एक उनका अपना होटल भी है। इसके अलावा राष्ट्रपति और भी कई व्यापार करते हैं और वे दुनिया के सातवें-आठवें नम्बर के घनी व्यक्ति माने जाते हैं।

जिस दिन उक्त मित्र नैरोबी पहुँचे, उसी दिन संसद का अधिवेशन शुरू हुआ था और घण्टे भर बाद ही बन्द हो गया। अधिवेशन शुरू होते ही कुछ सदस्यों में कहा-सुनी हो गई। अव्यवस्था बढ़ती देख राष्ट्रपति ने संसद में खड़े होकर स्वाहिली भाषा में आदेश दिया कि मैं अपने अधिकार से संसद को अनिश्चित काल के लिए स्थगित करता हूँ। यह आदेश देकर वे सदन से बाहर चले गये और सब सदस्य

एक-दूसरे का मुँह देखते रह गए ।

युगाण्डा के राष्ट्रपति इदी अमीन को दुनिया भी भूली नहीं होगी जिन्होंने युगाण्डा में वसे एक भारतीय व्यापारी की लड़की से शादी करनी चाही थी, पर इस सम्बन्ध के लिए न वह लड़की तैयार हुई, न उसके पिता । इसका परिणाम केवल उस लड़की और उसके पिता को ही नहीं भोगना पड़ा—युगाण्डा में वसे भारत-मूल के समस्त लोगों को भोगना पड़ा । सब भारतीयों को युगाण्डा से निष्कासित कर दिया गया और उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गई ।

ताजा समाचार है कि युगाण्डा में ईसाइयों के सबसे धर्मगुरु आर्क-विशेष रेवरेण्ड जानानी लुबुम को और मंत्रिमंडल के दो वरिष्ठ मंत्रियों को गिरफ्तार कर लिया गया । इनमें से एक थे गृहमंत्री चाल्स ओबोथोफुम्बी और दूसरे थे भूमि और जल-संसाधन मंत्री लेफिट. कर्नल एरिनायो विल्सन और येमा । आरोप यह था कि ये तीनों व्यक्ति राष्ट्रपति इदी अमीन को अपदस्थ करने के किसी घड़यन्त्र में शामिल थे । राष्ट्रपति की निजी सेना के ३००० सैनिक ने माँग की थी कि इन तीनों को तुरन्त गोली से उड़ा दिया जाए । पर दयालु और न्यायप्रिय राष्ट्रपति ने सैनिकों की बात मानने से इन्कार कर दिया और उन पर बाकायदा अदालत में मुकदमा चलाने की घोषणा की । अगले दिन जब तीनों बन्दियों को पूछताछ के लिए ले जाया जा रहा था तब अचानक उनकी गाड़ी दुर्घटनाप्रस्त हो गई और तीनों का घटनास्थल पर ही प्राणान्त हो गया । तीनों कैसे अभागे थे कि उनके लिए न्याय की जो व्यवस्था की गई थी उसका नाटक भी नहीं देख पाए ।

यों संसार में दुर्घटनाएं होती रहती हैं । अघटित-घटना-पटीयसी भगवती नियति की लीला को कौन जान सकता है ! पर चतुर राज-नीतिक चैम्पियनों ने जिस तरह नियति को अपना वंशवद/बना लिया है, उससे नियति पर विश्वास न करने वालों को भी उस पर विश्वास करना पड़ता है ।

लोकतंत्र और तानाशाही को परस्पर-विरोधी समझा जाता है । पर खलील जिबान की एक कथा है :—

एक दिन सुमित नदी में स्नान करने गई। अपने कपड़े उतार कर उसने किनारे पर रख दिए और पानी में उत्तर पड़ी। सदा सुमिति की टोह में रहने वाली कुमति नदी तट पर आई और किनारे पर सुमिति के कपड़े पड़े देखे। उसने चटपट अपने कपड़े उतार कर वहाँ रख दिए और सुमिति के कपड़े पहनकर वहाँ से चलती बनी। जब स्नान से तृप्त होकर सुमिति नदी से बाहर निकली तो उसे अपने कपड़ों के स्थान पर कुमति के कपड़े मिले। विचारी क्या करती—लज्जा ढँकने के लिए उसे कुमति के छोड़े हुए कपड़े ही पहनने पड़े। तब से सुमिति और कुमति संसार में एक-दूसरे के कपड़े पहने घूम रही हैं।

यों लोकतंत्र लोक पर आधारित है, पर व्यवहारिक स्तर पर उसमें कहीं से राजतंत्र भी घुसपैठ कर बैठता है। जैसे ब्रिटेन का लोक-तंत्र राजतंत्र से समन्वित है और कुछ राजनीतिज्ञ तो उसे आदर्श प्रणाली बताते हैं। इसी तरह समाजवाद के भी कई रूप हैं। चीन का समाजवाद अलग है, सोवियत संघ का अलग, स्कैडेनेवियन देशों का का अलग और भारत का अलग। यदि ब्रिटेन में लोकतंत्र और राज-तंत्र साथ-साथ चल सकते हैं, तो अन्यत्र क्यों नहीं चल सकते ?

वेद ने कहा था—

ये पुरुषे ब्रह्म विदुः ते विदुः परमेष्ठिनम् ।

—जिन्होंने पुरुष में ब्रह्म के दर्शन कर लिए, उन्होंने परमेष्ठी के दर्शन कर लिए। या महाभारत में महर्षि व्यास ने कहा था—

न हि मानुषात श्रेष्ठतरं हि किंचित् ॥

—मनुष्य से बढ़कर श्रेष्ठ संसार में कुछ नहीं है। या रवि बाबू ने कहा था—

सबार ऊपर मानुष

ताहार ऊपर कछु नेई ।

—मनुष्य सब से ऊपर है और उससे ऊपर कुछ नहीं हैं। लगता है कि इसी मानववाद का रूप राजनीति में लोकतंत्र की संज्ञा पा गया है।

पर जिस लोक पर लोकतंत्र आधारित है, आज उससे बढ़कर

निरर्हि और कौन है ? जो भी कुछ होता है—सब जनता के नाम पर, जनता के भले के लिए और लोकतंत्र की रक्षा के लिए। जनता विचारी सोच ही नहीं पाती कि उसका भला किसमें है—तभी तो इतने दल हैं, इतने उम्मीदवार हैं और चुनावों की इतनी गहमगहमी है। सभी जनता का समर्थन चाहते हैं। किसलिए ? केवल इसलिए कि उन्हें कुर्सी मिल जाए। कुर्सी किस लिए ?—केवल जनता का भला करने के लिए। जैसे बिना कुर्सी के जनता का भला हो ही नहीं सकता।

यं० जवाहरलाल नेहरू ने ‘हिन्दुस्तान की कहानी’ में लिखा है :  
 ...जब मैं किसी जलसे में पहुँचता, तो मेरा स्वागत ‘भारत माता की जय’ के नारे से किया जाता। मैं लोगों से पूछ बैठता कि यह भारत माता कौन है, जिसकी वे जय चाहते हैं।...वे एक दूसरे की तरफ या मेरी तरफ देखने लगते।...वे ऊब कर मुझ से कहते कि मैं ही बताऊँ।...मैं उन्हें बताता कि भारत माता का अर्थ है—हिन्दुस्तान के लोग, उनके और मेरे जैसे करोड़ों लोग, और ‘भारतमाता की जय’ का मतलब है इन लोगों की जय। मैं उनसे कहता कि एक तरह से तुम ही भारतमाता हो।”

बाल खोले, त्रिशूल हाथ में धारण किए, और अपना आँचल हवा में लहराये जिस देवी को भारतमाता के रूप में कभी चित्रित किया गया था और ‘बन्देमातम्’ के द्वारा बंकिमचंद्र ने जिसकी स्तुति की थी, वह देवी और कोई नहीं, भारत की जनता ही है।



## जबान का रस

एक साधु भिक्षा की तलाश में द्वार-द्वार अलख जगा रहा था, पर नगरी के निवासी ऐसे दया-शून्य थे कि किसी का दिल न पसीजा। एक बुढ़िया को दया आई। उसने साधु को आदर-सहित अन्दर बुलाया और उसके लिए खिचड़ी पकाने लगी। साधु भी बुढ़िया के पास ही बैठ गया और बात करने लगा। बुढ़िया से पूछा, 'माई! तेरे कितने बच्चे हैं?' बुढ़िया ने कहा, 'मेरे एक ही बेटा है।' साधु ने पूछा, 'कहां है?' बुढ़िया बोली, 'परदेस में।' साधु अनावश्यक रूप से बाचाल था। बोला, 'माई! अगर तेरा वह इकलौता बेटा बीमार पड़ जाए तो?' बुढ़िया ने कहा, 'भैया! रोग-ज्ञोक तो शरीर के साथ लगा ही रहता है। अगर मेरा बेटा अचानक बीमार पड़ जाए तो इलाज से स्वस्थ भी हो जाएगा। इसमें चिन्ता की क्या बात है!' पर साधु की जबान पर तो लगाम नहीं थी, न ही उसे समय-असमय का ज्ञान था। तुरन्त कह बैठा, 'माई! इलाज करने पर भी अगर वह स्वस्थ न हो पावे, तब तू क्या करेगी?'

इस पर बुढ़िया का धैर्य टूट गया। इकलौते बेटे के सम्बन्ध में इस प्रकार की अपशकुन भरी चर्चा सुनकर उसका मन खीभ उठा, उसने हंडिया के अन्दर पकती खिचड़ी साधु के अंगोछे में उलट दी और तैश में आकर साधु को घर से निकाल दिया। उस अवधपकी खिचड़ी को अंगोछे में बांधे जब साधु सड़क से गुजर रहा था जब किसी राहगीर ने उससे पूछा, 'बाबा! यह तुम्हारी पोटली में से बूँद-बूँद करके क्या टपक रहा है?' साधु ने कहा, 'यह मेरी जबान का रस टपक रहा है, और कुछ नहीं।'

यह जबान का रस ही है जो मित्र को भी शत्रु और शत्रु को भी

मित्र बना देता है। दोनों प्रकार के उदाहरण इतिहास में मिल जायेगे।  
तुलसीदास जी ने कहा है—

कोयल काको देत है, कागा काको लेत ।

तुलसी मीठे वचन ते, जग अपनो कर लेत ॥

मीठे वचन का जादू वशीकरण मंत्र से कम नहीं होता। 'वशी करण एक मंत्र है, तज दे वचन कठोर।' सन्तजनों ने अहनिश हरि नाम रटने का उपदेश शायद इसीलिए दिया है कि मुख से कभी कोई अशुभ शब्द न निकले। एक कवि का कहना है—

तजि कै हरिनाम भजै कछु तौ

रसना मुख काढ़ि हलाहल बोरो,

बावरी वे अंखियां जरि जाय

जो सांवरो छांड़ि निहारत गोरो ॥

असल में गुस्से में आकर जब कोई किसी को बुरा कहता है तो वो उसमें उसकी अपनी ही प्रतिच्छाया भलकती है। इसी बात को इकबाल ने अपने ढांग से यों कहा है—

तअस्सुब छोड़ दे नादां, दहर के आईना खाने में

ये तस्वीरें हैं तेरी जिनको, समझा है बुरा तूने ॥

केवल छोटी-मोटी व्यक्तिगत या पारिवारिक लड़ाइयों में ही नहीं, प्रत्युत कई बार बड़े-बड़े युद्धों के मूल में भी, किसी व्यक्ति-विशेष का कटू वचन ही प्रमुख होता है। महाभारत के बारे में कहा जाता है कि यदि द्रौपदी ने दुर्योधन को 'अन्धे के अन्धे ही पैदा हुए' जैसा कटू वचन वचन न कहा होता तो शायद महाभारत ही न होता।

रहीम ने लिखा है—

रहिमन जिह्वा बावरी, कहत आकाश पाताल ।

आप कहत भीतर गई, जूती खात कपाल ॥

कुछ लोगों ने आर्म चुनावों की तुलना महाभारत से की है। इस तुलना में भी यह विवाद का विषय बन गया है कि कौन पाण्डव हैं और कौन कौरव। महाभारत की कथा के अनुसार कौरवों के जनक धृतराष्ट्र अन्धे हैं। इस 'धृतराष्ट्र' शब्द का अर्थ व्याकरण के पण्डित क्या करते

## ४४ :: ओ ! मेरे राजहंस

हैं ? संस्कृत के विद्वान् इस शब्द की व्युत्पत्ति बताते हैं—‘धृतं राष्ट्रं येन’—अर्थात् जिसने राष्ट्र पर कब्जा कर रखा है । इधर साहित्यिक लोग इस शब्द को ‘अन्धा युग’ के प्रतीक के रूप में लेते हैं । अभी साहित्यिक और वेयाकरणों के इस वाग्वैदग्रन्थ से सामन्य जन को क्या लेना-देना है ? उसे तो अपने रोटी-पानी से ही फुरसत नहीं मिलती ।

ऐसे लोगों की कमी नहीं है जो लड़ाई और इश्क में हरेक नाजायज काम को भी ज्ञायज ठहराने की कोशिश करते हैं । पर साध्य और साधन की पवित्रता में समान रूप से विश्वास रखने वाला गांधीवादी आदर्श पाठ्याचार्य सभ्यता के इस दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करता । चुनाव महाभारात या लड़ाई नहीं है, यह तो एक पवित्र यज्ञ है । प्रधान मंत्री ने ठीक कहा है—‘इलेक्शन इज एन एवट आफ प्रेयर’—चुनाव तो प्रार्थना जितना ही पवित्र है और उसी श्रद्धा और शालीनता से इस महान् अभियान का उद्यापन और विसर्जन होना चाहिए । ऐसे पवित्र अभियान के दौरान यदि कोई व्यक्ति किसी भी पक्ष को ‘गधों द्वारा खींचा जाने वाला रथ’ की उपमा देता है तो उससे जबान का रस कितना ही टपके, पर उससे यज्ञ की पवित्रता लांछित होती है । महाभाष्यकार महर्षि पतंजलि ने लिखा है—

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा  
मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।  
स वाग वज्रो यजमानं हिनस्ति  
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपरधात ॥

—यदि कोई मंत्र स्वर या वर्ण से हीन हो और उसका गलत प्रयोग कर दिया जाए तो वह वज्र बन कर यजमान का ही अनिष्ट करता है—जैसे कि गलत स्वर से ‘इन्द्र शत्रु’ शब्द का प्रयोग करने पर वृत्र का अनिष्ट हो गया ।



## प्रह्लाद और होली

भारत का प्राचीन इतिहास अनेक कुहेलिकाओं और प्रहेलिकाओं से भरा हुआ है। फिर भी सूक्ष्म दृष्टि से उसका अध्ययन किया जाए तो बहुत कुछ सुसंगत चित्र आंखों के सामने उभरता है।

अब होली के साथ सम्बद्ध हिरण्यकश्यप और प्रह्लाद की कथा को ही लीजिए। कौन था यह हिरण्यकश्यप? उसे असुर क्यों कहा गया? होलिकादहन और नरसिंह-अवतार सम्बन्धी पौराणिक आख्यानों की कथा इतिहास के आधुनिक दृष्टिकोण से कोई बुद्धि-संगत व्याख्या की जा सकती है? यह प्रश्न प्रायः मनीषियों के मन को मथता रहा है।

सुर और असुर दोनों एक ही अभिजन के निवासी थे। नस्ल भी एक ही थी। पर आध्यात्मिक और राजनीतिक प्रतिद्वंद्विताओं के कारण दोनों एक-दूसरे के शत्रु बन गए थे। इसमें कोई अनहोनी बात नहीं है। इतिहास में अक्सर ऐसा होता आया है। इनके आपस में विवाह-सम्बंध भी होते थे। देवताओं की पत्नियां देव-कन्याएं भी होती थीं और असुर-कन्याएं भी। पर उस समय क्योंकि मातृसत्ता का युग था, इसलिएं मन्तान पर माता का ही अधिकार समझा जाता था। कश्यप ऋषि की भी दो पत्नियां थीं। दिति और अदिति। दिति की सन्तान दैत्य कहलाई और अदिति की आदित्य। देवों की परम्परा यह थी कि यज्ञ-याग आदि सात्त्विक गुणों की प्रमुखता के कारण ही कोई व्यक्ति समाज का नेता बनता था। देवराज इन्द्र का सिंहासन पाने के लिए सौ यज्ञों का विधान इसी परम्परा का संकेत करता है। बाद में इन्द्र भी विलासी बन गए, यह अलग बात है। पर दैत्य थे बलशाली, राजसी और तामसी वृत्ति के, वे केवल बल के आधार पर स्वर्ग के अधिपति बनना चाहते थे।

कश्यप की दिति नामक पत्नी से हिरण्यकशिपु (कुछ लोग 'हिरण्य-कश्यप भी लिखते हैं—शायद इस नामकरण में हिरण्य के साथ पिता का नाम जोड़ देने की भावना प्रबल रही हो)। और हिरण्याक्ष नामक दो पुत्र हुए। दोनों अतुल बलशाली और भौतिक शक्ति के माध्यम से ही त्रिलोकी में अपना शासन स्थापित करने की महत्त्वकांक्षा मन में धारण करने वाले। 'हिरण्यकशिपु' शब्द के अर्थ से ही यह ध्वनित होता है कि उसके पास अमित स्वर्ण-भण्डार था—तभी उसका पलंग भी सोने का और फर्नीचर भी सोने का। (हिरण्य-सोना, कशिपु-पलंग)। हिरण्याक्ष शब्द से भी यही ध्वनित होता है कि उसका एक-एक अंग सोने से बढ़ा हुआ था। जब इतना धन और प्रभुता हो तो मद क्यों नहीं होगा—

प्रभुता पाई जेहि मद नाहिं ।

ते नरवर थोड़े जग माहिं ॥

उस हिरण्यकशिपु के घर में पुत्र-रत्न पैदा हुआ—प्रह्लाद। जन्म से ही सात्त्विक संस्कारों का धनी। उसकी माता देव-कन्या रही होगी। उसमें बचपन से ही 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' के सिद्धान्त के प्रति विरक्ति थी, इसलिए वह देव-परम्परा का भक्त और 'विष्णु की जय' बोलने वाला। अपने पाश्विक बल से और प्रचुर सम्भावा के भरोसे स्वर्ग का राज्य हस्तगत करने का अभिलाषी हिरण्यकश्यप अपने घर में ही मूर्ति-मान विद्रोह को और अपने शत्रुओं की परम्परा के समर्थक को कैसे सहन करता। उसने पहले तो प्रह्लाद को समझाया, फिर उसके गुरुओं को उसे समझाने को कहा, पर प्रह्लाद टस से मस न हुआ। ज्यों-ज्यों उस पर अत्याचारों की मात्रा बढ़ती गई, त्यों-त्यों वह अपने विचारों में और दृढ़ होता गया।

प्रह्लाद की दृढ़ता और सात्त्विकता धीरे-धीरे रंग लाती गई। हिरण्यकशिपु के विरोध में अपनी जबान न हिलाने की हिम्मत न करने वाली जनता मन ही मन प्रह्लाद के प्रति श्रद्धाभिष्ठृत होती चली गई। ज्यों-ज्यों जनता के मन में इस विद्रोही राजकुमार के प्रति अनुराग बढ़ता गया त्यों-त्यों हिरण्यकशिपु के क्रोध की अग्नि में धी पड़ता गया। आखिर उसने अपनी वहन होलिका को जिसे यह वरदान प्राप्त था कि-

वह आग में नहीं जल सकती थी, हुक्म दिया कि वह अपनी गोद में प्रह्लाद को बिठाकर जलती आग की चिता में बैठे। शायद होलिका को किसी ऐसे रसायनिक लेप की जानकारी थी, जिस पर आग असर नहीं करती थी। पर उसे भी प्रह्लाद से स्नेह था। उसने वह लेप अपने शरीर पर लगाने के बजाय प्रह्लाद के शरीर पर लगा दिया। परिणाम-स्वरूप आग की ज्वालाओं में होलिका तो जल गई, पर प्रह्लाद सुरक्षित निकल आया।

होलिका के इस अद्भुत आत्मबलिदान की स्मृति में कदाचित आज तक होलिका-न्दहन की प्रथा कायम है।

एक वरदान हिरण्यकशिपु को भी प्राप्त था। वह यह कि उसे कोई आदमी या पशु नहीं मार सकता। इसके अलावा यह भी कि न उसे दिन में कोई मार सकता है, न रात में। इस वरदान के कारण उसका अभिमान कितना बढ़ गया होगा, इसकी कल्पना ही की जा सकती है। एक तो स्वयं इतना पराक्रमी, फिर प्रचुर धन-सम्पदा और ऊपर से यह यह वरदान। बस—

सर पै शैतान के  
एक और शैतान चड़ा

बाली बात हो गई। वह अपने-आपको अजेय तो समझता ही था, उसे यह भी विश्वास था कि मेरा कोई बाल भी बांका नहीं कर सकता। इसलिए वह देवताओं और भगवान के स्थान पर अपनी ही पूजा करता था। आस्तिकता से उसे तीव्र धृणा थी।

जब प्रह्लाद किसी भी तरह बस में नहीं आया तो उसके पिता ने उसे सब तरह से समाप्त करना चाहा—पहाड़ से गिराया, समुद्र में डुबाया, आग में जलाया, पर सदा प्रह्लाद का जीवन सुरक्षित रहा।

जब इस प्रकार प्रह्लाद को समाप्त करने के हिरण्यकशिपु के सब प्रयत्न बेकार हो गए, तब अंत में हताश होकर उसने प्रह्लाद को आग से लाल हुए लोहे के लम्बे से बांधकर अपनी आंखों के सामने ही उसके बध का निश्चय किया।

लोहे का खम्बा तैयार किया गया। उसे आग में तपाया गया। जब

## ४८ :: ओ ! मेरे राजहंस

खम्बा लाल अंगारे की तरह दहक उठा, तब हिरण्यकशिषु ने जल्लादों से कहा कि प्रह्लाद को इस खम्बे से बांध दो । परन्तु जल्लादों की जरूरत नहीं पड़ी । प्रह्लाद स्वयं ही अपने विचारों और आस्था की मस्ती में, जैसे स्वतंत्रता-संघर्ष के दिनों में कई क्रान्तिकारी फांसी के तस्ते पर जाकर भारत माता की जय बोलते हुए स्वयं ही फांसी का फंदा अपने गले में डाल लेते थे, वैसे ही स्वयं आगे बढ़कर मन में भगवान का स्मरण करते हुए उस अग्निमय खम्बे से भेंटने चला ।

कितना करुणाजनक दृश्य रहा होगा और दर्शक के रूप में बैठी जनता के मन में क्या-क्या भावनाएं हिलोर ले रही होंगी ?

शेष कथा यों है कि प्रह्लाद ने सहर्ष खम्बे का आलिंगन किया, तो उसका एक रोयां भी नहीं जला, पर उस खम्बे को चीर कर उसमें से भगवान विष्णु का नरसिंह-अवतार प्रकट हुआ और उसने हिरण्यकशिषु को मार डाला ।

यह नरसिंह-अवतार क्या है ?

लगता है, उस करुण दृश्य को देखकर जनता विचलित हो गई और उसने हिरण्यकशिषु के विरुद्ध विद्रोह कर दिया । शायद उस समय के जन-विद्रोह को चित्रित करने के लिए नरसिंह-अवतार की कल्पना पुराणों की अपनी शैली है ।

यों नास्तिक हिरण्यकशिषु के अधार्मिक राज्य के समाप्त होने पर जनता ने प्रह्लाद को अपना राजा बनाया । प्रह्लाद का राज्य-अर्थात् आह्लाद का राज्य । प्रह्लाद के राज्य में जनता ने सुख की सांस ली और देव-परम्परा की सात्त्विक विचारधारा पुनः चारों ओर फैल गई ।

हो सकता है, हिरण्यकशिषु और प्रह्लाद के इस आस्थ्यान का कोई अन्य आध्यात्मिक अर्थ भी हो, पर आधुनिक युग के विचारक की जैसी चिन्तन-शैली बन गई है, वह चमत्कारिक घटनाओं को भी इतिहास की तुलना पर तोल कर अपने ढंग से व्याख्या करना चाहती है । जो हो हमारे सब आस्थ्यानों में असत्य पर सत्य की विजय का सुंकेत तो है ही ।



## जो जागत है, सो पावत है

एक दार्शनिक एक तेली के पास तेल खरीदने गया। उसने देखा कि तेल के कोलहू में बैल अपने आप चल रहा है, उसे कोई चलाने वाला नहीं है। उसने तेली से पूछा कि बात क्या है—यह बैल अपने आप कैसे चलता जा रहा है? तेली ने कहा—देखते नहीं, हमने बैल की आंखों पर पट्टी बांध रखी है, उसे पता ही नहीं चलता कि कोई चलाने वाला है या नहीं।

दार्शनिक यों आसानी से आश्वस्त हो जाने वाला नहीं था, बोला—लेकिन यह बैल कभी खड़ा होकर इस बात की जाँच भी तो कर सकता है कि कोई चलाने वाला है या नहीं। तुम तो उसकी और पीठ किए बैठे हो, तुम्हें उसके खड़े हो जाने का पता भी नहीं लगेगा।

‘ तेली बोला—उसके गले में घण्टी इसीलिए तो बँधी है। जब तक चलता रहता है, घण्टी बजती रहती है। वह रुका कि घन्टी रुकी। बस, हम फिर उसे चला देते हैं। उसे पता ही नहीं लगता कि इस बीच उसे चलाने वाला कोई था या नहीं।

दार्शनिक का तर्क-प्रवण मन फिर भी आश्वस्त नहीं हुआ। पूछ बैठा—यह भी तो हो सकता है कि बैल खड़ा हो जाए और अपना सिर हिलाता रहे। इससे घण्टी बजती रहेगी और आप समझेंगे कि बैल चल रहा है।

इस पर तेली से नहीं रहा गया। वह तैश में आकर बोला—बैल आपकी तरह पढ़ा-लिखा तो है नहीं, महाराज! मेरा आप से निवेदन है कि आप कृपा करके ऐसी बातें जोर से न कहें। कहीं बैल ने आपकी बात सुन ली और आपकी बताई चतुराई उसने सीख ली तो

मेरा धन्धा चौपट हो जाएगा ।

सचमुच ही दुनिया के लोगों के गले में घण्टियां बंधी हुई हैं, जो लगातार बज रही हैं और आदमी है कि लगातार कोल्हू के बैल की तरह आँख बन्द किए चला जा रहा है। बैल का मालिक नहीं चाहता कि इस प्रकार तर्क-वितर्क करने की विद्या बैल तक पहुंच पाए। कोई मालिक नहीं चाहता। न कोई धार्मिक नेता चाहता है, न राजनीतिक नेता। सबका लाभ इसी में है। हरेक की आँख पर पट्टी बंधी है—किसी की आँख पर किसी रंग की, किसी के आँख पर किसी रंग की। शायद इसीलिए झंडों के रंग अलग हैं। पर तासीर एक है। गुलामी सबकी समान है। आदमी को सिखाया गया है—‘विश्वासः फलदायकः’—विश्वास रखो, तुम्हें फल अवश्य मिलेगा। जो विश्वास नहीं रखता’ वह ‘फेथलेस’ है, काफिर है और काफिर की सजा का क्या ठिकाना। वेद में लिखा है—

यो जागार तमृचः कामयन्ते  
यो जागार तमु सामानि यन्ति ।  
यो जागार तमयं सोम आह  
तवाहमस्मि सख्ये न्योकः ॥

—जो जागता है, ऋचाएं उसी की कामना करती हैं। जो जागता है, सुख-सौभाग्य भी उसी को प्राप्त होता है। जो जागता है, उसके पास आकर स्वयं सोम कहता है—मेरा निवास तुम्हारी मित्रता में ही है।

जैन साहित्य की एक कथा है। एक साधु एक गांव में गया। उसके प्रवचन में सबसे आगे आकर बैठ गया उस गांव का सबसे बड़ा धनपति। नाम था उसका आसोजी। प्रवचन सुनते-सुनते उसकी आँख लग गई। साधु ने उसे टोक दिया—‘आसोजी ! सो रहे हो ? आसोजी ने तुरन्त अकच्चका कर कहा—‘नहीं महाराज ! मैं तो बहुत ध्यान-मग्न होकर सुन रहा हूँ।’

साधु का प्रवचन फिर चालू हो गया। थोड़ी देर बाद आसोजी को फिर निन्द्रा ने धेर लिया। साधु ने फिर टोक दिया—‘आसोजी ! सोते हो ?’ इस बार आसोजी को गुस्सा आ गया। बोले—‘कौन कहता है

कि मैं सोता हूँ, मैं तो आँख बन्द करके पूरे ध्यान से एक एक शब्द सुन रहा हूँ।' साधु ने फिर अपना प्रवचन प्रारम्भ कर दिया। पर आसोजी तो अपनी आदत से लाचार थे। थोड़ी देर बाद फिर झपकी आ गई। तब साधु ने फिर टोका। हर बार तो साधु कहता था—'आसोजी! सोते हो?' इस बार उसने कहा—'आसोजी! जीते हो?' आसोजी ने समझा कि वही पुराना प्रश्न है, इसलिए बोले—'नहीं तो कौन कहता है? साधु ने कहा—'आसोजी! इस बार आप पकड़े गए। पर इस बार आपने गलती से सच्ची बात कह दी है। जो सोता है, वह जीता नहीं है। जीते के लिए जागना अत्यन्त जरूरी है।'

गतानुगतिको लोकः न लोकः पारमार्थिकः।

—एक के पीछे एक बाली भेड़चाल तो आम बात है, पर अपनी आँखों पर से पट्टी हटाकर, अपनी बुद्धि से विचार करके रास्ते पर कदम बढ़ाने वाले लोग दुर्लभ हैं। अन्धविश्वास में आराम है। स्वतंत्र चिन्तन में कठिन परिश्रम है। असुरक्षा का खतरा भी है। पर सदा सुरक्षा-सुरक्षा की चिन्ता करने वाला जीवन और यौवन के रस से वंचित रहता है। जिसने वैचारिक धरातल पर परवशता स्वीकार कर ली, उसका मेरुदण्ड सीधा कहाँ रहा। वह तो अकालबृद्ध हो गया। ज्यामिति के लम्ब की तरह मेरुदण्ड का सीधा होना केवल यौवन की ही नहीं, मानवता की भी निशानी है। मानव का मेरुदण्ड यदि प्रकृति ने लम्बरूप खड़ा बनाया है तो उसी प्रकृति ने पशु का मेरुदण्ड आड़ा और पड़ा बनाया है। अंग्रेजी के कवि यीट्स का कहना है—

वी मस्ट आनर'

इफ वी कैन

दी वट्टिकल मैन,

दो वी वैल्यू नन

बट दी हौरिजण्टल बन।

—हो सके तो आदर उसका करो, जिसका मेरुदण्ड सीधा हो, पर हम तो केवल पड़े हुए मेरुदण्ड के सिवाय और किसी का आदर करते ही नहीं।

आम चुनावों का भौसम है। देश का भविष्य दाँव पर लगा है। स्वतंत्र विचार लोकतंत्र का प्राण है। सभी दल जनता से सोच-समझ-कर मतदान करने का आग्रह करते हैं। पर बैल की आँखों पर से पट्टी हटाने को कौन तेली तैयार होगा ?

एक कथा याद आती है—

एक फकीर सारी दुनिया की सैर करके स्वदेश वापस आया। देश का राजा उसका बचपन का मित्र था। राजमहल में बुलाकर राजा ने उसका स्वागत किया और अन्त में पूछा कि तुम मेरे लिए क्या भेट लाए हो। फकीर ने कहा—सारी दुनिया में घूमते हुए और एक से एक अनोखी चीज देखते हुए मेरे मन में यही आता रहा कि तुम्हारे लिए कुछ भेट ले चलूँ। लेकिन जो भी चीज मैं लेना चाहता, तुरन्त यह विचार उसमें बाधक बन जाता कि राजा के पास तो इस तरह की चीज अब तक पहुंच ही चुकी होगी। मैं ऐसी भेट लाना चाहता था जो तुम्हारे पास न हो। आखिर मुझे वह चीज मिल गई और वह मैं तुम्हारे लिए ले आया।

राजा ने उत्सुक होकर पूछा—‘वह कहाँ है ?’

फकीर ने अपनी फटी पुरानी झोली राजा के आगे कर दी। राजा ने उसमें हाथ डालकर टटोला तो उसमें छोटा-सा, बहुत सस्ता, एक दर्पण निकला। राजा को हैरान देख फकीर ने कहा—‘राजन ! मैंने सोचा कि तुम्हारे पास और सब चीजें तो हो सकती हैं, परन्तु ऐसी चीज शायद न हो जिसमें तुम खुद अपने को देख सको। इसलिए मैं यह आईना तुम्हारे लिए ले आया हूँ।

चुनाव भी एक तरह का दर्पण है—जनता की ही शक्ति इसमें भल-कती है। उसके वर्तमान की शक्ति और उसके भविष्य की भी शक्ति। और यह भी कि जनता जाग रही है, या सो रही है।

जो जागत है, सो पावत है।



## विरक्ति 'मेड इन इण्डिया' से

पिछले दिनों एक कहानी पढ़ने में आई ।

एक भारतीय महिला विदेश गई तो उसे सबसे अधिक चिन्ता इसी बात की रही कि यहां से कोई ऐसी चीज ले जाऊं जिसे देखकर मेरी सब पड़ौसिन्हे हतप्रभ हो जाएं । रोम का सारा बाजार उसने छान मारा । अन्त में उसे एक 'लेडीज पर्स' पसन्द आया । उस पर्स की कारीगरी और सुन्दरता देखकर वह मुग्ध हो गई । उसे लगा कि मेरी वे सब सहेलियां, जो अपने घर में आयातित चीजें दिखा-दिखा कर रौब जमाती रहती हैं, इस पर्स को देखते ही चकित हुए बिना नहीं रहेंगी । उसने सहर्ष मुहमांगा दाम देकर वह पर्स खरीद लिया । होटल में आ कर जब उसने पर्स को उलट-पलट कर बारीकी से देखा तो उसके अन्दर लिखा हुआ पाया —'मेड इन इण्डिया' । बेचारी के सारे उत्साह पर पानी फिर गया ।

अगले दिन फिर उसी दुकानदार के पास पहुंची जिस से उसने पर्स खरीदा था । बोली—'आपने मुझे घोखा दिया हैं । मैं तो 'मेड इन इटली' समझकर इस पर्स को खरीद कर ले गई थी, इसमें तो 'मेड इन इण्डिया' लिखा है ।' दुकानदार ने विनम्रता-पूर्वक कहा—'मैडम ! यह पर्स आपने स्वयं पसंद किया था और यह आपके लिए और भी गर्व और गौरव की बात होनी चाहिए कि यह पर्स आपके ही देश का बना हुआ है ।'

भारतीय महिला ने कहा—'पर्स तो सचमुच बहुत अच्छा है, पर मुझे पता होता कि यह भारत का बना हुआ है, तो इसे कभी न खरीदती ।' अच्छा, अब आप इतना तो करवा सकते हैं कि इस पर-

‘मेड इन इटली’ लिखवा दें ?

भारत में, खास कर नव-धनाढ़्य वर्ग में, भारतीय चीजों के प्रति जिस तरह की ‘एलर्जी’ है और आयातित चीजों के प्रति आवश्यकता से अधिक मोह है, उसके लिए उक्त कहानी बहुत अच्छा व्यंग्य है। पर इसे व्यंग ही क्यों कहें ? क्या यह वास्तविकता नहीं है ? देश की आजादी की चौथाई सदी से अधिक गुजर चुकी है, पर ऐसे आयातित वस्तु भक्त लोग अभी तक विदेशी दासता के युग में ही रह रहे हैं। शायद उम्र बढ़ने के साथ-साथ उनका ‘आई. क्यू.’ नहीं बढ़ा, उल्टे लगातार घटता ही गया। उनकी आंखों पर लगी रंगीन ऐनक को देश में कोई तरक्की नहीं दिखाई देती। कभी-कभी जोश में आकर वे यहां तक कह जाते हैं कि वर्तमान स्वतंत्र भारत की अपेक्षा ब्रिटिश कालीन परतंत्र भारत कहीं अधिक अच्छा था। शायद ऐसे लोग चिकित्सकों की दृष्टि में हृदयप्रत्यारोपण और मस्तिष्क प्रत्यारोपण के सही केस सिद्ध हों !

आजादी से पहले जिस देश में एक सूई भी नहीं बनती थी, आज वह अपने जलपोत और अपने विजयन्त टेंक बनाता है। परतन्त्रता के युग में जिस देश में रैले की साईकिल और कपड़े सीने की सिंगर मशीन विदेशों से बनकर आती थी, आज उस देश की बनी साईकिलों से और सिलाई की मशीनों से विदेशों के बाजार पटे पड़े हैं। विदेशों की वैज्ञानिक प्रतिभा के आगे भारतीय प्रतिभा को सदा बौना समझने वालों को भारत द्वारा किया गया परमाणुविस्फोटक और अन्तरिक्ष में आर्यभट्ट नामक उपग्रह का प्रक्षेपण भी कोई विशेष वैज्ञानिक उपलब्धि प्रतीत नहीं होती। उनका मानस वैदेशिक दासता से इतना अधिक आच्छन्न है कि उन्हें विश्वास ही नहीं होता कि भारत में बनी हुई कोई चीज विदेशों में बनी चीज से टक्कर ले सकती है।

विज्ञान और तकनीक में पश्चिम जर्मनी संसार के अग्रगण्य देशों में समझा जाता है, परन्तु उसके साथ जो व्यापारिक समझौते हुए हैं उनके अन्तर्गत गत वर्ष भारत-जर्मन व्यापार पौने तीन अरब रु. तक पहुंच चुका है और भारतीय निर्यात साढ़े पचपन प्रतिशत बढ़ा है।

भारत में बनी एच. एम. टी. की घड़ियों की मांग पश्चिमी जर्मनी में निरन्तर वृद्धि पर है और इधर ऐसे भारतीय युवक भी हैं जो 'इम्पो-टेंड घड़ी की कुछ भी कीमत देने को तैयार रहते हैं। प्रिंटिंग मशीनों तक का निर्यात पश्चिमी जर्मनी को भारत से होता है।

कितनी ही ऐसी औद्योगिक वस्तुएं हैं जिन्हें पहले भारत बाहर से मंगाता था, पर आज उनमें बहुत कमी आ गई है और कुछ चीजों में तो देश पूर्णतः आत्मनिर्भर है। उदाहरण के लिए ट्रैक्टर और कृषि उपकरणों के निर्माण में, शूगर मिल मशीनरी और टैक्सटाइल मिल मशीनरी और सीमेंट मिल मशीनरी के निर्माण में, कागज के कारखाने, इस्पात कारखाने और विद्युत उत्पादन के कारखाने खड़े करने में, भारत आज पूर्णतः आत्मनिर्भर है। उपभोक्ता वस्तुओं के उद्योगों में आज भारत को किसी अन्य देश का मुख्य देखने की आवश्यकता नहीं। इंजिनियरिंग के सामान का निर्यात जिस तेजी से बढ़ा है उसका परिणाम यह है कि भारत की वैज्ञानिक और तकनीकी परामर्श-प्रतिभा की मांग भी लगातार बढ़ती जा रही है।

जिसे राजनीतिक परिभाषा में 'तृतीय विश्व' कहा जाता है उस के अधिकांश देश आज विकास के उस चरण में हैं जिसमें भारत कई साल पहले था। भारत का अनुभव और परामर्श उनके लिए लाभदायक हो सकता है और कितने ही क्षेत्र ऐसे हैं जिनमें अथ से लेकर इति तक भारतीय इंजिनियर परामर्श देने की स्थिति में है। पाकिस्तान, बर्मा, श्रीलंका, न्युजीलैंड, जाम्बिया, थाईलैंड, सूडान, बंगला देश, ईराक और पूर्वी अफ्रीका से विभिन्न रेल-उपकरणों के लिए भारत को बड़े आर्डर मिले हैं, और ईरान ने तो रेल-यातायात संबंधी पूरी सामग्री ही सप्लाई करने का आर्डर दिया है। और इस प्रकार के जितने आर्डर मिले हैं, वे अनायास नहीं, बल्कि अन्तर्राष्ट्रीय कम्पनियों की निविदा प्रतियोगिता में विजयी होने पर ही मिले हैं। भारत हैवी इलैक्ट्रिकल्स को लीबिया से लगभग एक अरब रु० की विद्युत परियोजना को ठेका मिला है। इंजिनियरिंग प्रोजेक्ट्स (इंडिया) लिमिटेड को कुवैत में एक पूरी बस्ती के लिए मकान बनाने का ठेका मिला है और इस्टर्न मैट्रेशन लिमिटेड

## ५६ :: ओ ! मेरे राजहंस

को मलयेशिया में नाना उपकरण भेजने का बड़ा ठेका मिला है। भारत के सार्वजनिक या निजी दोनों प्रकार के उद्योगों ने अब इतनी क्षमता प्राप्त कर ली है कि वे इंजिनीयरों, टैकनीशियनों और प्रबन्धव्यवस्थापकों तक का नियंत्रित करने की स्थिति में हैं।

भारत के सहयोग से अपने यहां औद्योगिक विस्तार का स्वप्न देखने वाले अनेक देशों ने इस प्रकार के लगभग ६०० प्रस्तावों को स्वीकृति दी है जिसमें भारत को साढ़े पांच अरब रु. खर्च करना पड़ेगा और लगभग २४ अरब रु० की विदेशी मुद्रा उसे प्राप्त होगी।

चमत्कार देखिए। भारत का सन्पन्न वर्ग आयातित वस्त्रों के पीछे दीवाना है और अमरीका तथा यूरोप के लोग भारतीय हथकरघे के कपड़े के पीछे दीवाने हैं।

यह कहानी काफी लम्बी है। क्या अब भी भारत-निर्मित चीजों के प्रति वित्तज्ञा का भाव रखने वालों को यह बताने की आवश्यकता है कि अब यह ब्रिटिशकालीन जड़ भारत नहीं रहा, प्रगति के पथ पर द्रुत गति से अग्रसर जीवन्त भारत है। अब यह परमुखायेक्षी नहीं, पर-सुखायेक्षी है और उनके अभ्युदय में अपना विनम्र योग देने की स्थिति में है।



## राम का अवतार-कार्य

एक ईसाई पादरी अपनी जन्म भूमि बेलजियम में बैठा एक दिन विश्व साहित्य विषयक एक जर्मन ग्रंथ के पन्ने पलट रहा था कि उसकी आँखें रामचरितमानस की निम्न पक्कियाँ पढ़कर अटक गईं—

घन्य जन्म जगतीतल तासू ।  
पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ॥  
चारि पदारथ करतल ताके ।  
प्रिय पितुमातु प्रान सम जाके ॥

उस व्यक्ति को न तो नागरी लिपि का ज्ञान था और न वह अवधी भाषा का एक भी शब्द समझ सकता था । गनीमत थी कि उस ग्रंथ में दिए गए सभी उद्धरणों का जर्मन भाषा में अनुवाद किया हुआ था । उस व्यक्ति ने बार-बार उन चौपाईयों को पढ़ा, उनका अर्थ हृदयंगम किया और धीरे-धीरे उसके हृदय में संगीत की एक ध्वनि-सी गूँजने लगी । उसकी हृदयतंत्री के तार झँड़त हो उठे । उस व्यक्ति को क्या पता था कि ये चौपाईयाँ उसके समूचे जीवन को ही बदल कर रख देंगी ।

वह व्यक्ति सन 1935 में भारत आया । उसने उसी वर्ष हिन्दी पढ़ना प्रारम्भ किया और खड़ी बोली का यांत्कंचित ज्ञान हो जाने के पश्चात उसने तुलसी की रचनाओं का अध्ययन प्रारम्भ कर दिया । ज्यों-ज्यों उसका अध्ययन बढ़ता गया, तुलसी का जादू उस पर चढ़ता गया और अब तो आजीवन तुलसी साहित्य का अनुशीलन ही उसका जीवन-वृत् बन गया । उस व्यक्ति का नाम है—फादर कामिल बुल्के । आज तुलसी साहित्य के मर्मज्ञों में उनका अग्रण्य स्थान है ।

विन्सेन्ट स्मिथ ने तुलसीदास के विषय में लिखा है—‘इस व्यक्ति

का नाम न आपको 'आइने अकबरी' में मिलेगा, न मुस्लिम वृत्तान्तों के पृष्ठों में, न फारसी इतिहासकारों पर आधारित यूरोपीय लेखकों के ग्रंथों में। फिर भी यह हिन्दू भारत में अपने समय का सबसे महान पुरुष था। वह अकबर से भी महान था, क्योंकि इसने कवि के रूप में करोड़ों हृदयों पर अपना अधिकार कर लिया था। उसकी यह विजय सम्राट द्वारा प्राप्त की गई समस्त विजयों से कहीं अधिक चिरस्थायी तथा महत्वपूर्ण है।'

केवल तुलसीदास ही क्यों, महर्षि बाल्मीकि से लेकर आज तक विभिन्न भाषाओं में जिन कवियों ने भी रामचरित को अपनी काव्य-प्रतिभा का अर्ध्यं प्रदान किया है, उनका यश राजा-महाराजाओं के यश को आक्रान्त कर गया है।

रस-सिद्ध कवियों के सम्बन्ध में कहा ही है :

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः

नास्ति येषां यशः काये जरामरणजै भयम् !

कि उनके यशरूपी शरीर को जरा और मरण का भय नहीं छूता। पर अजरता और अमरता की इस उपलब्धि में काव्यप्रतिभा के साथ राम-कथा के चमत्कार का भी कम अंश नहीं है। राम-कथा में मानव-हृदय द्रविण करने की जैसी अद्भुत क्षमता है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। उसमें आदर्श और व्यवहार का ऐसा उच्च मापदण्ड स्थापित है जो देश और काल की सीमाओं को पार कर सदा मानव जाति को प्रेरणा देता रहेगा। राम का अपूर्व व्यक्तित्व न केवल काव्य-प्रतिभा का अजस्र स्रोत बना, बल्कि वह सांस्कृतिक चेतना की अनुपम निधि भी बना, दार्शनिक चिन्तन का स्पृहणीय तत्व बना और भक्ति का आलम्बन भी बना। भारतीय मनीषा ने इस अपूर्व व्यक्तित्व को महत्ता प्रदान करते-करते नर-कोटि की सीमा से उठाकर देव-कोटि में अन्तरः ब्रह्म-कोटि में स्थापित कर दिया।

व्यक्ति और समाज जिस धर्म के आधार पर टिके हैं उनका मूर्ति-मान स्वरूप देखना हो तो वह राम में मिलेगा। इसलिए राम को रामो विग्रहवान् धर्मः

—कह कर शरीरधारी धर्म कहा गया है। राम अपने जीवन के प्रारम्भ से लेकर जीवन के अन्तिम क्षणों तक स्वधर्म से—अपने कर्तव्य पालन से—बंधे रहे। इसीलिए उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम, मर्यादामणि और रघुकुलतिलक कहा गया।

प्राचीन आर्यों ने जब-जब जीवन के विषय में या आपसी व्यवहार के विषय में सोचा, तब सबसे पहले अपने आप से यही प्रश्न किया—‘मेरा धर्म क्या है, मेरा कर्तव्य क्या है?’—‘मेरा अधिकार क्या है?’ यह सदा बाद में सोचा। परन्तु आज लोग उल्टे ढंग से सोचते हैं। आज कर्तव्य से पहले अधिकार की बात सामने आती है। ‘दूसरों के साथ मेरा व्यवहार क्या होना चाहिए’—इसके बदले आज रिवाज यह है कि ‘मेरे साथ दूसरों का व्यवहार क्या होना चाहिए।’ अधिकार की चर्चा स्वार्थ का ही एक रूप है, इसके मूल में अहं भाव भी भरा है। यह अधिकार-वृत्ति राक्षस-वृत्ति का ही परिचायक है। समाज में से यह वृत्ति समाप्त हो जाए तो समझना चाहिए कि रावण मर गया। इस रावण को मारने के लिए और अधिकार के स्थान पर कर्तव्य और धर्म की मर्यादा स्थापित करने के लिए ही प्रभु का अवतार हुआ था।

अधर्म और असुरी भाव के हजारों मुँह होते हैं। किसी युग में राक्षस ऋषियों के ज्ञानों को भ्रष्ट करते थे, तो किसी युग में गरीबों का लहू चूसते हैं। किसी युग में राक्षस देवों से वे बेगार करवाते थे तो किसी युग में स्त्रियों की लाज लूटते हैं और किसी युग में ईश्वर और धर्म का नाम लेने वालों की जीभ काटने को तैयार हो जाते हैं।

ये राक्षस केवल लंका या दण्डकारण्य में नहीं रहते। यह राक्षसी वृत्ति लोकमानस में मौजूद रहती है। लोकमारस में विद्यमान इस राक्षसी वृत्ति का निराकरण और उसके स्थान पर ईश्वरीय भाव की स्थापना ही अवतार-कार्य है। तभी तो राम प्रतिज्ञा करते हैं—

निसिचर हीन करी मही

भुज उठाए प्रण कीन्ह।

ऋषि-गण राम के इस अवतार-कार्य में सहायक थे। राम ने स्वयं ऋषियों के सामने प्रतिज्ञा की थी और अपनी इस प्रतिज्ञा के पालन

६० :: ओ ! मेरे राजहंस

में वे इतनी तत्परता से दृढ़ थे कि उन्होंने स्वयं सीते के सामने इन शब्दों में उसे दुहराया था—

अप्यहं जीवितं जह्याम, त्वांवा सीते सलक्षणाम् ।

न हि प्रतिज्ञां संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः ॥

—मैं अपने जीवन को तिलांजलि दे सकता हूँ, हे सीते ! मैं लक्ष्मण समेत तुझे भी तिलांजली दे सकता हूँ, किन्तु ऋषियों के सामने मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसे तिलांजलि नहीं दे सकता । उस प्रतिज्ञा को तिलां-देने से तो अवतार ग्रहण का उद्देश्य ही अपूर्ण रह जाता ।

जन-जन में विद्यमान स्वार्थपरायण राक्षसी वृत्ति के स्थान पर निःस्वार्थ समाज-सेवा और राष्ट्र सेवा की ईश्वरी भावना में योग देने वाला प्रत्येकव्यक्ति उस अवतार-कार्य में सहायक है ।



## आदमी की खोपड़ी

अमरीका के न्यू जर्सी नामक स्थान में एक न्यायाधीश इस पशोपेश में है कि भावातीत ध्यान कोई धर्म है या नहीं—इस बारे में क्या फैसला दे । अब से लगभग दो साल पहले पाँच पब्लिक स्कूलों ने अपने यहाँ पाठ्यक्रम में क्रेडिट कोर्स के रूप में भावातीत ध्यान को भी शामिल किया था । पर इन स्कूलों में पढ़ने वाले छात्रों के अभिभावकों ने इस कोर्स का विरोध किया और कहा कि यह प्रछन्न रूप से हमारे बच्चों को हिन्दू धर्म की दीक्षा दी जा रही है । इन अभिभावकों को प्रेरित करने वाली एक संस्था है जो आध्यात्मिक जालसाजी का विरोध करती है । इस संस्था का नाम है 'स्प्रिंग्युअल काउण्टरफीट प्रोजेक्ट्स' । यह संस्था इस मुकदमे पर अब तक लगभग तीन लाख ४० खर्च कर चुकी है और उसका कहना है कि मुकदमे का फैसला यदि यहाँ नहीं हुआ तो हम सुप्रीम कोर्ट तक जाएंगे और केस जीत कर छोड़ेंगे, भले ही हमें इसके लिए तीस लाख ४० क्यों न खर्च करने पड़ें ।

यह बताने की आवश्यकता नहीं कि भावातीत ध्यान के प्रवर्तक आचार्य महेश योगी हैं जिन्होंने ऋषिकेश में गंगा के पार शंकराचार्य नगर के नाम से अपना आश्रम बनाया है । एक समय था जब अनेक बीठल भी महेश योगी के शिष्य बने थे । योगिराज का अपना अलग हवाई जहाज था और अलग हवाई अड्डा । उन्होंने अपने विदेशी शिष्यों के लिए फाइव स्टार होटलों जैसे रहन-सहन का प्रबन्ध किया था । पर यहाँ उनके प्रति विरक्ति का कुछ ऐसा बातावरण बना कि वे अमरीका चले गए । वहाँ उन्हें ऐसी सफलता मिली कि

केवल अमरीका में ही नहीं, यूरोप के अन्य अनेक देशों के संकड़ों स्कूल-कालेजों में भावातीत ध्यान एक पाठ्य विषय बन गया। जब भावातीत ध्यान की लोकप्रियता निरन्तर बढ़ती गई तो उसके विरोधियों का भी प्रादुर्भाव हो गया और यह शिकायत की जाने लगी कि यह प्रच्छन्न रूप से धर्म-परिवर्तन की चाल है।

योगेश्वर कृष्ण द्वारा वर्णित विचारधारा का प्रचार करने के लिए जो 'हरेकृष्ण' आन्दोलन चला, इसका उद्गम वेशक भारत में हुआ, पर उसका जितना प्रचार पश्चिमी देशों में है, उतना भारत में नहीं है। गेरुए रंग का धोती-कुर्ता पहने और घोटमघोट सिर पर खूब मोटी चोटी रखे विदेशी युवक अब हरेकृष्ण आन्दोलन का प्रचार करने के लिए अमरीका से भारत आते हैं। अमरीका में हरेकृष्ण आन्दोलन का बढ़ता प्रचार कइयों के लिए परेशानी का भी कारण बन गया। कृष्ण चैतन्य के समर्थकों की पाश्चात्य रहन-सहन के सर्वथा विस्तृद्ध इस विचारधारा का विरोध करने के लिए भी लोग उठ खड़े हुए और एक व्यक्ति ने अदालत में मुकदमा दायर कर दिया कि हरेकृष्ण वालों ने मेरे बालक को गैरकानूनी तरीके से अपने यहाँ रोक रखा है और वे अनुचित रूप से उसके 'दिमाग की धुलाई' कर रहे हैं।

न्युयार्क की अदालत ने इस पर फैसला दिया है कि हरेकृष्ण आन्दोलन एक 'सदाशयी वैध धर्म' है। अदालत के सामने मुख्य प्रश्न यह है कि प्रतिवादी को अपनी इच्छा से चुने हुए धर्म का पालन करने की छूट है या नहीं—और उसका उत्तर होगा कि है। न्यायालय ने यह भी कहा कि हरेकृष्ण आन्दोलन यथार्थतः धर्म है और भारत में हजारों सालों से लोग इसका पालन करते आए हैं। जब एक बार हमने धर्म की स्वतंत्रता का सिद्धान्त स्वीकार किया है, तो केवल इस कारण उस स्वतंत्रता में कभी नहीं की जा सकती कि समाज की परम्परागत मुख्य धारा से या अन्य परम्परागत धर्मों से वह भिन्न है। यदि प्रभु की प्राप्ति और खोज के लिए अपनी अन्तरात्मा के अनुसार चलने से किसी को रोका जाएगा तो संविधान द्वारा प्रदत्त

वार्षिक स्वतंत्रता निरर्थक हो जाएगी। राज्य की ओर से इसमें किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नागरिकों के मूलभूत अधिकारों के लिए स्पष्ट खतरा है।

असल में आदमी की खोपड़ी बड़ी विचित्र है। सेंसार में इतनी तरह के विचार, आस्थाएं, विश्वास और मान्यताएं हैं कि कभी-कभी तो उनके पारस्परिक विरोध की देखकर आश्चर्य होता है। 'मुण्डे मुण्डे मतिभिन्नना' और 'तुण्डे तुण्डे सरस्वती'। पर यह विचार-वैविध्य ही मनुष्य के विचारशील प्राणी होने की निशानी है। शायद पशुओं में कभी विचार-भेद नहीं होता। इस विचार-भेद के रहते मानवता तब तक सुरक्षित नहीं रह सकती जब तक उसमें सहिष्णुता न हो।

खोपड़ी की बात आई तो एक छोटी सी कहानी भी याद आ गई—

राजमहल के बाहर भीड़ लगी थी। एक भिखारी राजा के सामने अपना भिक्षापात्र फैलाए खड़ा था। उसने राजा के सामने शर्त रखी थी कि मैं आप से भिक्षा। तभी लूंगा जब आप मेरा पात्र पूरा भर देंगे। राजा मन ही मन हंसा। उसने अहंकार में भर कर भिखारी से कहा कि ऐसी ही शर्त है तो तेरा भिक्षापात्र अन्न से नहीं, अशक्फियों से भरेंगे। राजा ने वजीर को हुक्म दिया कि इस भिखारी का भिक्षापात्र अशक्फियों से भर दिया जाए।

अशक्फियाँ आईं, भिक्षापात्र में डाली गईं, पर न मालूम वे किघर खिसक गईं। पात्र खाली का खाली। फिर और अशक्फियाँ आईं। पात्र फिर खाली। फिर तो परेशानी पैदा होने लगी। राजा भी हार मानने वाला नहीं था। उसने राजकोष खुलवा दिया। अशक्फियाँ आती गईं, पर पात्र नहीं भरा जा सका। भीड़ यही देख रही थी कि राजा हारता है कि भिखारी।

अन्त में जब सारा राजकोष खाली हो गया और पात्र नहीं भरा जा सका तो राजा भिखारी के पैरों पर गिर पड़ा और बोला— अभिमान में आकर मुझसे भूल हो गई। मैं हार स्वीकार करता हूँ। पर जाने से पहले कृपा करके इतना तो बता दीजिए कि यह भिक्षा-

पात्र किस जादू से या किस मंत्र से बना है कि यह कभी भरता ही नहीं ।

भिक्षुक ने कहा—राजन ! इसमें न कोई जादू है, न मंत्र । मैं एक मरघट से गुजर रहा था, वहाँ आदमी की यह खोपड़ी पड़ी मिली ! मैंने इसी को उठाकर अपना भिक्षापात्र बना लिया । मैं खुद यह देख कर हैरान होता हूँ कि यह पात्र भरता क्यों नहीं । बाद में यह तत्व समझ में आया कि आदमी की खोपड़ी चीज ही ऐसी है कि वह कभी भरती नहीं । इसीलिए यह पात्र भी नहीं भरता ।

आदमी की खोपड़ी की विचित्रता की ही निशानी है यह समाचार भी—

पोर्टसमाउथ में एक बूढ़ा रहता था—संसार से विरक्त; एकाकी फटेहाल । उसकी उम्र थी ७१ वर्ष और नाम था अर्नेस्ट डिगवीड । गत सितम्बर में उसका स्वर्गवास हो गया । न कोई सगा, न सम्बन्धी । वह मरने से पहले वसीयत कर गया कि मेरी सारी सम्पत्ति (२६.१०७ पौण्ड अर्थात् लगभग ५ लाख रु०) हजरत ईसामसीह को दे दी जाए—अगर वे अगले ७० साल के अन्दर अन्दर इस पृथ्वी पर लौट आवें । अलबत्ता, वसीयत के ट्रस्टियों के सामने उस व्यक्ति को यह प्रमाणित करना पड़ेगा कि वही ईसामसीह हैं । यदि इस अवधि में इस पृथ्वी पर लौट कर वह न आवें तो यह सारी राशि सरकारी खजाने में चली जाए । वसीयतनामे के मुख्तार का कहना है कि सब से बड़ी समस्या यह होगी कि यह कैसे सिद्ध किया जाए कि अमुक व्यक्ति ही ईसामसीह है—इस सिलसिले में पता नहीं कितने सनकियों से निपटना पड़ेगा

सनकीपने का भी एक उदाहरण लीजिए :

कहते हैं कि एक बार वर्टेंड रसेल अपने घर के द्वार पर खड़े थे कि एक आदमी ने आकर उनकी गर्दन पकड़ ली और कहा—‘मैं आपकी किताबों से बहुत परेशान हूँ । मेरी समझ में ही नहीं आता कि आप क्या लिखते हैं । आज तक मैं आपकी किताबों का सिर्फ एक ही वाक्य समझ सका हूँ, पर वह भी गलत है ।’ वर्टेंड रसेल ने

घबरा कर पूछा—‘कौन सा वाक्य ?’ उसने कहा—‘आप ने लिखा है—सीजर मर चुका है। पर यह बात गलत है।’ रसेल ने कहा—‘तुम्हारे पास कोई प्रमाण है ?’ उस आदमी ने कहा—‘क्यों नहीं, मैं खुद सीजर हूँ।’

रसेल ने कहा—‘मैं हाथ जोड़ता हूँ, मुझ से गलती हो गई। अब मैं इसे सुधार दूँगा।’ वह आदमी खुश होकर चला गया।

बाद में पता चला कि वह एक फिल्म में सीजर का अभिनय करता था। उसका दिमाग खराब हो गया—तब से वह अपने आपको सीजर ही समझने लगा। जब उसने किताब में पढ़ा कि सीजर मर गया, तो उसे बहुत गुस्सा आया कि यह कैसा आदमी है, जो मुझे मर गया बताता है, मैं तो अभी जिन्दा हूँ।



## फूलों से न मारे कोई मेरे दीवाने को !

कभी नेपोलियन ने कहा था—जहाँ पुष्प अपने गुणों को खो देते हैं वहाँ मनुष्य जीवित नहीं रह सकता ।'

पुष्पों के साथ मनुष्य का ऐसा क्या सम्बन्ध है, यह कहना कठिन है ? मानव-जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं में फूलों का कहीं स्थान नहीं है । यदि गेहूँ और गुलाब का भगड़ा हो जाए, तो शायद गेहूं जीत जाए और गुलाब हार जाए । पर इतने मात्र से गुलाब को गेहूँ से नीचा दर्जा नहीं दिया जा सकता । गेहूँ के बिना मानव-जीवन कठिन है, तो गुलाब के बिना भी ।

एक पाश्चात्य विद्वान का कहना है : 'फूल वेशक इशारा हमारी और करते हों, पर ये संदेश स्वर्ग का और सृष्टिकर्ता का ही देते हैं ।' बीचर हेनरीवार्ड का कहना है—'प्रभु द्वारा बनाई गई सृष्टि में फूल मधुरतम वस्तु है, पर विधाता उसमें आत्मा डालना भूल गया ।'

पर कवि का हृदय इस बात को इतनी आसानी से स्वीकार नहीं करेगा । वह तो फूलों को अपनी ही तरह चैतन्य और आत्मायुक्त मानता है, उससे तादात्म्य स्थापित करता है और अपने सब सुख-दुःख उसी पर आरोपित करके उसके माध्यम से अपनी बात कह देता है । इसीलिए शेख सादी ने 'गुलिस्तां' में लिखा था—

अगर सारी भौतिक सम्पदा से तुम महरूम हो जाओ और लें-  
देकर तुम्हारे पास केवल दो रोटियां बच जाएं तो एक रोटी  
बेचकर उससे फूल खरीद लो जिससे तुम्हारी आत्मा भूखी न  
रहे ।

यदि गेहूँ पेट भरने का साधन हैं तो बिना गुलाब के आत्मा के:

भूखे मरने का अन्देशा है। पहले के लोगों ने गुलाब पर बहुत जोर दिया था, और आज का आदमी गेहूँ पर बहुत जोर देता है। पुरानी पीढ़ियां गेहूँ की उपेक्षा करती थीं और नई पीढ़ियां गुलाब के पीछे हाथ धोकर पड़ी हैं—साथ ही कहती हैं कि गुलाब की उपासना पेट भरों के चोंचले हैं। दरिद्रनारायण के आराधक महात्मा गांधी भी जब किसी अमीर का गुलाबों का बगीचा देखते और पुष्प प्रेम की खातिर उसकी लगन तथा प्रभूत व्यय की बात सुनते तो मन में प्रसन्न होने के बजाय बहुत सन्तप्त होते और कहते कि इतनी भूमि पर गुलाब के बजाय यदि गेहूँ या कोई और अनाज उगाया जाता उससे कुछ लोगों की भूख की समस्या तो हल होती।

असल में गेहूँ और गुलाब दो विचार-धाराओं के प्रतीक बन गए। भौतिकवाद ने गेहूँ को सबसे ऊपर प्रतिष्ठित कर दिया और अध्यात्मवाद ने गुलाब को। पर जैसे शरीर और आत्मा दोनों अन्योन्याश्रित हैं, वैसे ही समाज का जीवन भी गेहूँ और गुलाब दोनों पर आश्रित है। इनमें से एक के भी अभाव में वह पंगु हो जाएगा।

यहां बात रोटी और आजादी के साथ है। आजादी छीन कर रोटी दी तो किस काम की? लोकतंत्र नष्ट करके और आर्थिक उन्नति के नारे लगाकर तथा उसके लिए विदेशों के प्रमाण पत्र पेश करके जनता को भरमाया नहीं जा सकता—यह सब ने देख ही लिया। इसीलिए वर्तमान प्रधान मंत्री ने राष्ट्र के नाम अपने संदेश में कहा है कि रोटी और लोकतंत्र परस्पर विरोधी नहीं हैं। भारत में समाजवाद का जो भी रूप आएगा उसमें इन तीनों की परस्पर पूरकता साधनी होगी।

मोरारजी देसाई और समाजवादी? क्यों नहीं। मोरारजी भाई के मन को समझने के लिए उन्हीं के द्वारा वर्णित एक घटना का उल्लेख करना उचित होगा—

सन् १९५४ की बात है। महाराष्ट्र में भयंकर अकाल पड़ा था। जबाहरलाल जी महाराष्ट्र का दौरा कर रहे थे। वे लाखों विपदग्रस्त लोगों से मिले और अपने भाषणों से उनके हृदय में आशा का संचार

किया । एक दृश्य ने मेरा हृदय छू लिया । जवाहरलाल जी जब श्रमिकों की एक बस्ती में गए तो उन्होंने एक बच्चे को गोद में उठा लिया । बच्चा कोई सुन्दर नहीं था । जवाहरलाल ने अपना रूमाल निकाल कर रोते हुए बच्चे के आंसू पोंछे और फिर अपने हाथ से उसकी ठुड़ी पकड़ कर उसका सिर ऊंचा किया । जिन्होंने भी इस दृश्य को देखा उनके लिए इसका एक गहरा अर्थ था । यह एक प्रयास था भारत के भविष्य को आज के बच्चे की नजरों में झांक कर देखने का, और एक आह्वान था कि सिर ऊंचा रखो, मुसीबतों का बहादुरी से सामना करो ।

शायद मोरारजी के मन में भारत के लिए जिस समाजवाद की कल्पना है उसका सबसे बड़ा सिद्धांत यही है—प्रत्येक बच्चे की आंख का आंसू पोंछ दिया जाए, भारत प्रत्येक क्षेत्र में इतना स्वावलम्बी हो जाए कि उसे किसी के भी आगे हाथ न फैलाना पड़े और इतना निर्भय हो कि उसका मस्तक सदा ऊंचा रहे, कहीं न भूके । पता नहीं, समाजवाद की किसी पुस्तक में इस प्रकार के सिद्धांतों का उल्लेख है या नहीं, पर भारतीय समाजवाद के ये अनिवार्य तत्व हैं ।

बात तो फूल की चल रही थी और फूल की बात कहते-कहते अपने अनोखे ढंग से कही गई इकबाल की यह उक्ति भी याद आए—  
बिना नहीं रहती—

फूल की पत्ती से कट  
सकता है हीरे का जिगर ।  
मर्द नादां पर कलामे  
नर्मो नाजुक बेग्रसर ।

हो सकता है, जिन फूलों की पत्तियों से हीरे का जिगर कट सकता है, वे सर्वत्र सुलभ न हों, पर अब ऐसे नादान मर्द ही सुलभ क्यों मान लिया जाएँ जिन पर नाजुक और नर्म कलाम का असर न होता हो । हवा बदली है, माहौल बदला है, व्यवस्था बदली है । तो क्या नादान मर्दों की नादानी नहीं बदलेगी ? तथाकथित नादानों में भी अब खुद को दानाओं में शुमार करने की होड़ चल तो पड़ी है ।

फूलों से न मारे कोई मेरे दीवाने को ! :: ६४

पर जरा ठहरिए। मासूम फलों को भी अब निरा निरापद समझने की भूल मत कर बैठिए। आयुर्विज्ञान अनुसंधान परिषद् के सदस्यों का कहना है कि फूलों के गुलदस्ते में ऐसे कीटाणु हो सकते हैं जो रोगों के संवाहक हों और यह नितान्त सम्भव है कि अपनी शुभकामना प्रकट करने के लिए आप जिस व्यक्ति के गले में फूलों की माला डालते हैं, वह उस रोग के संक्रमण का शिकार हो जाए। शुभकामना प्रकट करने वाले और शुभकामना ग्रहण करने वाले—दोनों के लिए ही यह एक प्रच्छन्न चेतावनी तो है ही।

प्रशंसकों और आशिकों सावधान ! भविष्य में—

फूलों से तो न मारे कोई मेरे दीवाने को ।



## किसानों का दोस्त या दुश्मन ?

किसान का दोस्त कौन है ?

शास्त्रीय ढंग की बात करने वाले लोग कहेंगे कि 'आत्मव ह्यात्मनो बन्धुरत्मैव रिपुरात्मनः'—आदमी स्वयं अपना दोस्त होता है और स्वयं ही अपना शत्रु होता है, इसलिए किसान का असली दोस्त खुद किसान ही हो सकता है ।

पर बात शास्त्र की नहीं, व्यवहार की है । (इसका अर्थ यह न समझा जाए कि शास्त्र और व्यवहार में परस्पर-विरोध अवश्यंभावी है ।) यदि अच्छा बीज न हो तो किसान प्रभूत परिश्रम करके और पसीना बहाकर भी अच्छी फसल नहीं पा सकता । या मान लीजिए— समय पर बारिश न हो, सूखा पड़ जाए या उचित ढंग का उर्वरक या खाद उपलब्ध न हो सके, या अतिवृष्टि हो जाए तो भी फसल चौपट । मान लीजिए कि फसल को कीड़ा लग जाए, तब भी किसान का सारा परिश्रम बेकार हो सकता है ।

बात को आगे बढ़ाने से पहले एक समाचार पढ़ लें । अमरीका की एक कम्पनी ने फोस्वेल नामक एक कीटनाशक तैयार किया है । कम्पनी ने इस कीटनाशक द्रव्य को 'किसान का दोस्त' बताया है और दावा किया है कि इस कीटनाशक के प्रयोग से फसल में कम से कम २५ प्रतिशत वृद्धि हो जाती है । इससे बढ़कर खुशी की बात किसान के लिए और क्या हो सकती है कि ऐसा कीटनाशक उसे सुलभ हो जाए जो उसकी फसल में २५ प्रतिशत वृद्धि कर दे । किसान तो इस समाचार से खुशी के मारे उछल पड़ेगा । अमरीकी कम्पनी ने यह कीटनाशक सस्ती दर पर भारत को बेचने में पेशकश की है । पर 'श्रेयांसी बहु-

'विज्ञानि'—भले कामों में बहुत से विज्ञ अनायास उत्पन्न हो जाते हैं। इस समाचार का भी अगला हिस्सा है जिससे खुशी रफूचकर हो जाती है।

इस कीटनाशक को अमरीका में बेचने पर प्रतिबन्ध है। पहले इसका मिस्र ग्राहक था और वहाँ बहुत बड़े पैमाने पर इस कीटनाशक का प्रयोग भी हुआ, पर मिस्र ने भी इसे मंगाना बंद कर दिया है। कारण ? कारण यह कि इसके प्रयोग से वहाँ सैकड़ों भैंसों को लकवा मार गया। और तो और टेक्सास के जिस कारखाने में यह कीटनाशक तैयार होता है, उस कारखाने के एक दर्जन से भी अधिक लोगों को भी लकवा मार गया।

इस पर जब शोर मचा तब वैज्ञानिकों ने खोज प्रारम्भ की कि यह फोसवेल क्या चीज़ है ? खोज करने पर पता लगा कि लेप्टोफोस का व्यापारिक नाम है—फोसवेल। लेप्टोफोस उस विष-वर्ग का अंग है जो और गैनो फॉसफेट कहलाते हैं। इस जाति के विष स्नायुसंस्थान को इस हृद तक विकृत कर देते हैं कि अन्त में वह काम करना ही बन्द कर देता है। इस विष का असर शुरू में पता नहीं लगता, पर जब पता लगता है तब तक स्थिति इतनी बिगड़ चुकी होती है कि उस स्थिति को बदला नहीं जा सकता। टैक्सास के जिस कारखाने में यह फोसवेल तैयार होता है उसमें १६७६ में इसके निर्माण पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया, पर तब तक लाखों पौण्ड फोसवेल बनकर जमा हो चुका था। आगे निर्माण बन्द, पर जो निर्मित हो चुका, उसका क्या हो ? तब निश्चय हुआ कि इस फोसवेल को अन्य देशों को निर्यात किया जाए। पहले मिस्र इसका बहुत बड़ा खरीदार बना, पर जब पहले वर्ष में ही १५०० भैंसें पक्षाधात ग्रस्त हो गई और उनमें से बहुत-सी, मर गई, तब स्वयं मिस्र के वैज्ञानिकों ने इसकी जाँच की। मुर्गियों पर तथा अन्य पशु-पक्षियों पर परीक्षण किए गए और अन्त में इसे अत्यन्त घातक मानकर इस कीटनाशक को मंगाना बंद कर दिया।

उधर अमरीकी वैज्ञानिक भी इसी परिणाम पर पहुँचे। तब कम्पनी ने स्वयं अपने वैज्ञानिकों से पृथक् रूप से जाँच कर वार्ड। उनकी जाँच

चल रही थी कि कम्पनी के कारखाने के कुछ कर्मचारियों को भी पक्षा-धात हो गया । उनकी टाँगें तथा अन्य अंग बेकार हो गए । अपनी-टाँगों का इस्तेमाल करके चलने-फिरने लायक होने में उन्हें कई साल लग गईं । उनमें से एक भी कर्मचारी अब तक पूर्णतः स्वस्थ नहीं हो पाया है ।

इस समय कारखाने में १५ लाख पौण्ड फोसवेल जमा है । अमरीका में बेचने पर प्रतिबन्ध भले ही हो, पर अमरीकी कानून में अन्य देशों को नियंत्रित करने के लिए कम्पनी स्वतंत्र है । इसलिए कम्पनी ने बढ़िया विज्ञापन किया, फोसवेल को 'किसानों का दोस्त' बताया, फसल में २५ प्रतिशत वृद्धि का प्रचार किया और भारत को सस्ती दर पर बेचने की तैयारी की ।

गेहूँ में धूरे के बीज और खेसरी दाल के काण्डों की चर्चा जनता भूल भी न हो पाई होगी कि अब यह नया काण्ड सामने है । परोपकार भी कोई यों ही करता है क्या ? पंचतंत्र की कथा के अनुसार शाण्डिली-माता यदि अपने तिलों को सस्ता बेचकर महंगे तिल खरीद रही थी तो उसके पीछे कुछ हेतु तो था ही ।

जर्मन कवि ह्यूम ने एक कविता लिखी है :

एक रात भगवान ने मुझसे पूछा कि तुम क्या चाहते हो ? किस बात से खुश होगे ? मैंने कहा, मैं बहुत बड़ा मकान चाहता हूँ—इतना बड़ा कि गाँव में और किसी का मकान उतना बड़ा न हो । भगवान ने कहा—अच्छा, हो जाएगा, और क्या चाहते हो ? मैंने कहा—ऐसा शानदार बगीचा चाहता हूँ, जैसा और किसी के यहाँ न हो । भगवान ने कहा—यह भी हो जाएगा । और बोलो क्या चाहते हो ? मैंने कहा—मैं जिस चीज की भी कामना करूँ, वह तुरन्त क्षण भर में मुझे मिल जाए । भगवान ने कहा—यह भी हो जाएगा, और बोलो ? मैंने कहा—यदि आपकी मुझ पर इतनी ही कृपा है तो मेरे मन की अंतिम इच्छा और पूरी कर दीजिए । और वह इच्छा यह है कि मेरे पड़ौसी मेरे बगीचे के दररस्तों पर उल्टे लटके हों । इस दृश्य को देख मेरे आनन्द की सीमा न रहेगी ।

तभी अचानक मेरी नींद खुल गई और मैं यह देखकर घबरा गया कि मेरे मन में कौसी-कौसी कामनाएँ और दुष्कामनाएँ छिपी हुई हैं ।

धर्मात्मा लोगों की सदा यह इच्छा होती है कि उन्हें स्वर्ग मिले । उनका सारा पूजा-पाठ और धर्म-कर्म इसलिए होता है कि इसकी बदौलत एक दिन हमें स्वर्ग के सुखों के उपभोग का अवसर मिलेगा । पर स्वर्ग के सुखों का उपभोग करते-करते भी उन्हें तृप्ति तब तक नहीं मिलती जब तक वे पापियों को नरक-कुण्ड में पड़े कराहते हुए न देख लें ।

मानव का मन भी कितना विचित्र है । परोपकार की आड़ में कितना स्वार्थ उसके मन में छिपा होता है ! एक शेर याद आ रहा है । पता नहीं इस प्रसंग में वह शेर कहाँ तक फिट होगा ! पर किसानों की दोस्ती से शुरू हुई बात को अगर गुलों की इस चर्चा से समाप्त करें तो शायद अनुचित न होगा । शेर यों है—

कितने गुलों का खून हुआ, इसमें क्या गरज ।

उनके गले का हार तो तैयार हो गया ।



## रेगिस्तान में फूल खिलेंगे

लगता है, अब वैज्ञानिक लोग हाथ धोकर रेगिस्तानों के पीछे पड़ गए हैं।

रंग-बिरंगे कोमल कमनीय कुसुमों का दर्शन-स्पर्शन कर आनन्द लाभ करने वाले, और अपनी मनोहरी गंध से वातावरण को सुरभित करने वाले, सुमन-समुदाय को देवताओं के चरणों पर चढ़ाकर उसकी सुगन्धि से आप्यायित होने के अभ्यस्त मानव को रेगिस्तानों से मानसिक वितृष्णा होती है। हरियाली को देखकर जैसे आँखें जुड़ा जाती है, वैसे ही वृक्ष-वनस्पति-शून्य निचाट नंगे सपाट रेगिस्तानी मैदान को देखकर आँखों का कष्ट भी कम नहीं होता।

करारविन्देन पदारविन्दं

मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम् ।

अपने हस्तकमल से अपने चरण-कमल को अपने मुख-कमल में प्रविष्ट करते कृष्णकन्हैया की बाल-छवि को देखकर मुख होने वाले कवियों ने हाथ-पाँव-मुख का उपमान कमल को शायद इसीलिए चुना है कि वह क-मल अर्थात् जल का मैल है, जलज है। संस्कृत के 'आप्' शब्द को फारसी वालों ने 'आब' बना दिया है और आब भी आभा का पर्यायिकाची इसीलिए बन गया है, क्योंकि उसका सम्बन्ध पानी से है। पानीदार घोड़ा, पानीदार पहलवान, पानीदार नयन और पानीदार कवि में वही पानी शब्द अपनी उसी आभा वाली विशिष्टता को उजागर करता है। साथ ही इससे पानी के प्रति सहृदयों का पक्षपात और जल-शून्य स्थान के प्रति उनकी विरक्ति भी तो प्रकट होती है।

परन्तु क्या रेगिस्तान में सौन्दर्य नहीं होता ?

रेत के टीलों में छिपे सौन्दर्य को आत्मसात् करने की सामर्थ्य सबमें नहीं होती। परन्तु जिसे एक बार मरुभूमि का मर्म हाथ लग जाता है, वह तो फिर-फिर उसी की ओर भागता है। सैकड़ों-हजारों मील दूर से भी मरुभूमि का यह सौंदर्य अपने आशिकों को अपनी ओर खींचता रहता है। शिमला-मसूरी-नैनीताल जैसे पर्वतीय स्थानों पर भले ही जाएँ आधुनिक सभ्यता के उपासक धन-संपन्न लोग स्वास्थ्य-सुधार के लिए, पर कलकत्ते के मारवाड़ी तो राजस्थान के रेगिस्तानी इलाकों में जाकर ही स्वास्थ्य लाभ करते हैं।

जैसे पर्वतीय चढ़ाई-उत्तराई के अभ्यस्त पहाड़ी आदमी को मैदानों के सीधे-सरल रास्ते अखरते हैं, वैसे ही रेगिस्तानी प्रदेशों में जन्म लोगों को बम्बई और कलकत्ते जैसे सब तरह की सुविधाओं से सुसज्जित महानगर भी नमी वाली आबहवा के कारण उतने न रुचते हों, तो आश्चर्य नहीं। यों व्यापार-व्यवसाय के लिए सारी जिदगी भले ही उन महानगरों में गुजर जाए।

एक बार बीकानेर-नरेश महाराज पृथ्वीसिंह दक्षिण के विजय-अभियान पर गए हुए थे। एक दिन घोड़े पर सवार जा रहे थे कि अकस्मात् राह के किनारे खेजड़ी का छोटा-सा पौधा उन्हें दिख गया। उन्हें आश्चर्य हुआ कि रेगिस्तान में होने वाला यह पौधा यहाँ कहाँ से आ गया। तुरन्त घोड़े से उतर पड़े। उनके उत्तरते ही अन्य संगी-साथी भी घोड़े से उतर पड़े। किसी ने पूछ ही लिया कि महाराज, क्या बात है? पृथ्वीसिंह ने कहा कि बीकानेर के रेगिस्तान में पैदा होने वाले इस खेजड़ी के पौधे को यहाँ उगा देखकर मुझे अपनी जन्मभूमि की याद आ गई है और अपनी जन्मभूमि से सैकड़ों मील दूर उसकी याद दिलाने वाले इस पौधे के प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए मैं घोड़े से उतर पड़ा हूँ।

जब कलकत्ते के लखपति सेठ व्याह-बरात की अपनी दावतों में टींट के अचार, ग्वार की फली के शाक और राजस्थानी पापड़ को अन्य सब पदार्थों से अधिक तरजीह देते हैं, तब वे भी इसी प्रकार की कृतज्ञता व्यक्त कर रहे होते हैं।

पर बात रेगिस्तान के सौन्दर्य की नहीं, उसे उपजाऊ बनाने की है। खेती का सम्बन्ध पानी के साथ है। जब घनधोर रेगिस्तान में पानी ही नहीं, तो खेती कहाँ से हो ? बीकानेर के इलाके में, कहते हैं, सात-सात सौ फुट गहरे कुएँ हैं। जैसलमेर, वाडमेर, जोधपुर, बीकानेर और थार रेगिस्तान के अन्य इलाकों में ऐसी बस्तियाँ भी हैं, जहाँ दूध सुलभ है, पानी नहीं। पानी है भी, तो दस-बीस मील की दूरी पर है और परिवार के कुछ लोग नियमित रूप से इतनी दूरी से पानी लाने के अभियान में ही जुटे रहते हैं।

अमरकोश के रचयिता ने 'जीवन भूवनं वनम्' कहकर जीवन को पानी का पर्यायवाची क्यों कहा है, इसे वे ही लोग अच्छी तरह समझ सकते हैं जिन्हें पानी की एक-एक बूँद के लिए अपना कई-कई बूँद पसीना बहाना पड़ता है। रियाज नामक शायर ने अपनी मस्ती में शराब के बारे में जो कुछ कहा है, वह रेगिस्तान के आन्तरिक प्रदेशों के निवासियों के बारे में बिल्कुल सही उत्तरता है। उसका कहना है—

टपका दें बूँद भर कोई मुँह में रियाज के ।

दम मयकदे में तोड़ रहा हूँ पड़ा हुआ ।

आजादी पाने के तीस बरस बाद भी देश में सिचाई के साधनों की सम्यक् उपलब्धि की बात दरकिनार, आज भी ऐसे प्रदेश हैं जहाँ स्वच्छ पेय जल सर्वथा दुर्लभ है। या तो कुओं का खारा पानी पीजिए, या कीचड़ भरे उन जोहड़-तालाबों का पानी पीजिए जिनमें भैसे भी स्वच्छ-न्दता से लोटती हैं। शायद उनके बारे में फैज की यह उक्ति चरितर्थ हो—

कई बार इसका दामन भर दिया हुस्ने-दो आलम से

मगर दिल है कि इसकी खाना-बीरानी नहीं जाती ।

अन्तर इतना ही है कि बड़े-बड़े बाँध बनाने की योजनाओं में घिरी हुस्ने-दो-आलम, मोतियों वाली सरकार ने उन प्रदेशों के निवासियों का दामन पेय-जल से भरने की भी कभी कोशिश नहीं की, फिर उनकी खाना-बीरानी कैसे जाए !

बात हम रेगिस्तान को उपजाऊ बनाने के प्रयत्नों की कर रहे थे ।

यह संमस्या केवल भारत की नहीं है। विश्व में और भी अनेक भयंकर रेगिस्तान हैं। तुर्किस्तान के निकट ३०० से लेकर ६०० मील तक चौड़ा और लगभग २५०० मील लम्बा गोबी का विश्व प्रसिद्ध विशाल मरुस्थल है। उत्तरी अफ्रीका के निकट सहारा का रेगिस्तान है जहाँ गर्मियों में १४० डिग्री फारनहाइट तक तापमान पहुँच जाता है। अमरीका में केलिफोर्निया के निकट भयंकर रेगिस्तान है, जो मौत की घाटी के नाम से मशहूर है। इसी कोटि में भारत का थार का रेगिस्तान भी आता है। यदि नील नदी न होती तो सहारा का रेगिस्तान कितना भयंकर होता, या सिंध नदी न होती तो थार के रेगिस्तान की भयंकरता कितनी बढ़ जाती, यह केवल कल्पना का ही विषय है।

एशिया, अफ्रीका और अमरीका महाद्वीपों में फैले उन रेगिस्तानों के कुछ हिस्सों को उपजाऊ बनाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ ने कुछ योजनाएँ बनाई हैं। इजरायल शायद संसार का अन्यतम देश है जिसने अपने यहाँ के रेगिस्तान को हरे-भरे फलोत्पादक उद्यानों के रूप में परिवर्तित करने में अच्छी सफलता पाई है। संयुक्त राष्ट्रीय पर्यवेक्षकों का कहना है कि प्रति वर्ष संसार का लगभग ७० हजार वर्ग किलोमीटर प्रदेश बंजर और अनुपजाऊ बनता जाता है और इससे लगभग १० अरब डालर की हानि प्रतिवर्ष होती है। यदि बंजर बनती जाने वाली भूमि को ही हम बचा सकें तो अरबों डालर की हानि रोकी जा सकती है। परन्तु आश्चर्य है कि उपजाऊ भूमि को बंजर बनाने में सबसे बड़ा हाथ प्रकृति का उतना नहीं, जितना खुद मनुष्य का है। अधिक फसल लेने के लिए अंधाधुंध रासायनिक उर्वरकों के प्रयोग से भूमि को बंजर बनाते देर नहीं लगती।

हम उस दिन की उत्सुकता से प्रतीक्षा करेंगे जब गुलशन में नहीं, रेगिस्तान में फूल खिलेंगे।



## बहुजन हिताय बहुजन सुखाय

कैसा अद्भुत संयोग है कि किसी व्यक्ति के जन्म, बोध-प्राप्ति और मृत्यु—तीनों की एक तिथि हो। महात्मा बुद्ध का जन्म बैशाख पूर्णिमा को हुआ, उन्हें बोध भी बैशाख पूर्णिमा को प्राप्त हुआ और उनका महापरिनिर्वाण भी बैशाख पूर्णिमा को ही हुआ। कदाचित् इतिहास में अपने ढंग का यह अद्वितीय संयोग है।

जिस व्यक्ति ने अपने जीवन से और अपने उपदेशों से तत्कालीन समाज के सभी वर्गों को समान रूप से प्रभावित किया और जिसका सन्देश हिमाच्छादित पर्वतों की उत्तुंग चोटियों और महासागरों की उत्ताल तरंगों को लाँघ कर देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तर तक पहुँच गया, उसकी महिमा से कौन इन्कार करेगा? आज संसार का काफी बड़ा भाग महात्मा बुद्ध के विचारों से अनुप्राणित है।

महात्मा बुद्ध के उपदेशों में ऐसी कौन-सी विशेषता थी कि उसने राजा-रंक सभी के मत को छू लिया? मगध-नरेश बिम्बिसार और अजातशत्रु, कौशल-नरेश प्रसेनजित और उनकी रानी मल्लिका, प्रसिद्ध उद्योगपति श्रेष्ठिप्रबर अनाथपिण्डक, महान आयुर्वेदशास्त्री और प्राणाचार्य जीवक, प्रमुख नीति-शास्त्रवेत्ता सारिपुत्त और विद्वत्-शिरोमणि मौद्गल्यायन और अनिनन्द्य सुन्दरी आम्रपाली बौद्धकालीन इतिहास के ऐसे पात्र हैं जो ढाई हजार साल बीत जाने पर आज भी कट्टियों और कहानी-लेखकों को अपनी ओर आकर्षित करते हैं। बुद्ध के जीवन ने चित्रकारों की तूलिका को और शिल्पियों की छेनी को जिंतना प्रभावित किया है, उतना शायद और किसी एक व्यक्ति ने नहीं किया।

जब महाराज शुद्धोदन ने ज्योतिषियों से अपने नवजात बालक के भविष्य के बारे में पूछा, तब ज्योतिषियों ने कहा था कि यह बालक चक्रवर्ती सम्राट् होगा या चक्रवर्ती परिव्राट् होगा । सम्राट् बनने की बात महाराज को रुची, पर परिव्राट् बनने की शंका से चिन्ता हुई । ज्योतिषियों ने ही इसका उपाय भी बता दिया कि इस बालक के सामने कभी संसार की कुरुपता, व्याधि, जराग्रस्तता और मृत्यु का दृश्य न आने पावे, ताकि यह उस दिशा में सोच ही न पावे । पर जीवन की विडम्बना देखिए कि सिद्धार्थ ने फूलों का कुम्हलाना भी देखा, यौवन को वार्षक्य में परिणत होते भी देखा, रोगग्रस्त व्यक्ति की दुर्दशा भी देखी और अन्त में इस संसार को छोड़ कर परलोक प्रयाण करते व्यक्ति के पीछे शोकाकुल रिश्तेदारों को कन्दन करते भी देखा । और अन्त में तीस वर्ष की आयु होते न होते राजकुमार सिद्धार्थ गृह त्याग कर परिवर्ज्या के मार्ग पर चल पड़े ।

पर आत्मज्ञान क्या इतना सरल है ? लगातार ६ वर्ष तक भटकते रहे, विभिन्न गुरुओं की शरण में गए, कठोर से कठोर तप किया, पर बोध प्राप्त नहीं हुआ । अन्त में बोध गया में एक वटवृक्ष के नीचे एक यह प्रण करके बैठ गए—

इहासने शुष्यतु में शरीरं  
त्वगस्थि माँस विलय च यातु  
अप्राप्य बोधि बहुकल्प दुर्लभौ  
नैवासनात् कायमतश्चलिष्ये ।

—इस आसन पर बैठे-बैठे भले ही मेरा शरीर सूख जाए, मेरी त्वचा, अस्थियाँ और माँस सब गल जाएँ, किन्तु जब तक अनेक कल्पों में दुर्लभ बोध को प्राप्त नहीं कर लूँगा, तब तक मैं इस आसन से नहीं हिलूँगा ।

आखिर यह भीष्म प्रतिज्ञा सफल हुई । बोध प्राप्त हुआ । जिस वृक्ष के नीचे प्रण करके बैठे थे, वह बोधिवृक्ष कहलाया और गया भी बोध गया बन गया । बाद में इस बोधिवृक्ष की एक शाखा को लेकर महाराज अशोक की पुत्री संघमित्रा और पुत्र महेन्द्र सिंहल द्वीप

(श्रीलंका) में बौद्धधर्म के प्रचार के लिए गए। वह शास्त्रा विशाल वटवृक्ष के रूप में आज भी वहाँ पूजित है।

बोधप्राप्ति के पश्चात् लगभग ४५ वर्ष तक महात्मा बुद्ध गंगा की धाटी में अपने मन्तव्यों का प्रचार करते थमते रहे। जिस-जिस स्थान पर ये गए, वहाँ उनके अनुयायियों के लिए तीर्थ बन गया। विहार राज्य का तो नाम ही 'विहार' इसलिए पड़ गया कि वहाँ बाद में बौद्ध-विहारों की भरमार हो गई थी।

आधुनिक उत्तर प्रदेश में भी महात्मा बुद्ध से सम्बद्ध तीर्थ स्थानों की कमी नहीं है। वाराणसी के पास ऋषिपत्तन में महात्मा बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश दिया था—धर्मचक्र प्रवर्तन किया था, जो आज सारनाथ कहलाता है। इसी सारनाथ के घ्वज-स्तम्भ पर बने त्रिमूर्ति सिंह ने स्वतंत्र भारत की राजमुद्रा का गौरव पाया है। उत्तर प्रदेश के पिपरहवा नामक स्थान की खुदाई करके आधुनिक भारतीय पुरातत्ववेत्ताओं ने सिद्धार्थ के पिता शाक्यवंशीय महाराज शुद्धोदन की राजधानी कपिलवस्तु सिद्ध किया है। इलाहाबाद के पास सहेत गाँव श्रावस्ती है। सांकाश्य भी उत्तर प्रदेश में ही है जहाँ बुद्ध ने कई चातुर्मास्य किए थे। मिथिलाधिपति महाराज जनक के भ्राता थे कुशध्वज, उन्होंने सांकाश्य नगर बसाया था। (उत्तर प्रदेश सरकार ने पर्यटन विभाग द्वारा समाचार पत्रों में दिए गए विज्ञापनों में इस स्थान के नाम का उच्चारण 'सांकस्था' किस आधार पर किया गया है, भगवान जाने !) इसके अलावा महात्मा बुद्ध ने जिस स्थान पर निर्वाण प्राप्त किया था, वह कुशीनगर (गोरखपुर के पास) कसिया के नाम से आज भी विद्यमान है। (इस कसिया के साथ 'सरस्वती' के भूतपूर्व सम्पादक और ज्ञानवृद्ध वथोवृद्ध प्रसिद्ध हिन्दी-मनीषी श्रीनारायण चतुर्वेदी की 'कसिया की सड़क' वाली कविता भी याद आए बिना नहीं रहती।)

गीतम बुद्ध ने आज से २५०० वर्ष पहले जिस व्यक्तिगत स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व भावना पर बल दिया था, वह विचारधारा पाश्चात्य देशों में काँस की सन् १७८६ में हुई राज्य-क्रान्ति के पश्चात्

प्रस्फुटित हुई थी। तथागत ने जिसे धार्मिक जीवन का अंग बनाया था, वह आज राजनीतिक जीवन-दर्शन बन गया है।

बुद्ध की सफलता का रहस्य इस घटना से पता लग सकता है :

बुद्ध ने अपने शिष्यों से कहा, 'मैं तुम्हें एक प्रदेश में किसी विशेष कठिन काम के लिए भेजना चाहता हूँ। अगर उस देश के निवासियों ने तुम्हारी बात न सुनी, तो तुम क्या करोगे ?' एक शिष्य बोला, 'भगवन ! हम समझेंगे कि वे लोग बहुत अच्छे हैं। उन्होंने हमारी बात बेशक नहीं सुनी, पर हमें गाली तो नहीं दी।' 'अगर वे तुम्हें गाली दे तो ?' 'तो भी हम समझेंगे कि वे लोग अच्छे हैं, क्योंकि उन्होंने हमें मार-पीटा तो नहीं।' 'और अगर वे मार-पीट करें तो ?' 'तो भी भगवन वे भले ही हैं, क्योंकि हमें उन्होंने जान से तो नहीं मार डाला।' 'और अगर वे जान से मार डालें, तो ?' चौथे शिष्य ने फुर्ती से कहा, 'तब भी हम समझेंगे कि उस देश के लोग बहुत अच्छे हैं जिन्होंने हमें भगवान का काम करते हुए भगवान के पास पहुँचा दिया।' तथागत ने मुस्कराते हुए कहा,

चरथ भिक्खवे चारिकं बहुजन-हिताय

बहुजन सुखाय लोकानुकम्पाय ।

—जाओ भिक्षुओं जाओ, तुम परीक्षा में पास हो गए। अब तुम सर्वत्र अलख जगाते विचरण करो—जन-जन के हित के लिए, जन-जन के सुख के लिए और लोक पर अनुकम्पा के लिए।

कहते हैं, मैडम ब्लावेद्स्की अपने पास एक झोला रखती थी और जब वह गाड़ी में बैठती तब उस झोले में से कुछ निकालकर बाहर फेंकती रहती। उसने सारे संसार की यात्रा की। वह भारत भी आई। लोग उससे पूछते कि इस थैले में क्या है और तुम क्या बाहर फेंकती जाती हो। वह कहती—इसमें फूलों के बीज हैं, उन्हीं को निकालकर फेंकती जाती हूँ। जब बरसात आएगी, तो फूल खिलेंगे।

लोग कहते—तुम इस रास्ते से दुबारा भी निकलोगी, इसका क्या भरोसा ? वह कहती—इससे क्या फर्क पड़ता है। फूल खिलेंगे, कोई उन फूलों को देखकर आनन्दित होगा, मेरे लिए यही काफी है।

## ओ रे मेरे राजहंस !

आधुनिक युग में भारत की समस्त भाषाओं के साहित्य को जितना कवीन्द्र रवीन्द्र ने प्रभावित किया है, उतना शायद अन्य किसी व्यक्ति ने नहीं। विश्व कवि की वाणी वेशक बंगला में निःसूत हुई, परन्तु उनकी भावना सदा भारतीयता से ओतप्रोत रही। यही भारतीयता अपने विस्तृत रूप में विश्व मानव की प्रेरणा का उपजीव्य बनी। प्राचीन और अवचीन का, पूर्व और पश्चिम का, कला और विज्ञान का, गुह्य और यथार्थ का जो सुन्दर समन्वय कवीन्द्र की वाणी में मुखरित हुआ, वही समन्वय नवयुग का स्वर्णिम सूत्र बन गया। कवि की प्रिय संस्था विश्वभारती की मुदा पर अंकित 'यत्र विश्व भवत्येकनीडम्'—उनकी इसी समन्वय भावना का प्रतीक है।

जिस कवि ने भारत के राष्ट्रगीत की रचना करते हुए—

पतन अभ्युदय वन्धुर पन्था  
युग-युग धावित यात्री  
हे चिरसारथि, तव रथचक्रे  
मुखरित पथ दिन रात्रि  
दारुण विप्लव मांझे  
तव शंखध्वनि बाजे  
संकट दुःखत्राता !  
जनगणमन अधिनायक  
जय है भारत भाग्य विधाता !

लिख कर भारत के अतीत को वर्तमान के साथ जोड़ दिया था, उसी कवि ने भारत के प्रति भक्ति-विभोर होकर कहा था—'धन्य है मेरा

जीवन जो मैंने इस देश में जन्म लिया । मैं नहीं जानता कि वह नीलाकाश कहाँ है जहाँ मन्द-मधुर-स्थित-हास वाला चन्द्रमा उदित होता है । माँ ! मेरे नेत्र सर्वप्रथम तेरे ही प्रकाश में उन्मीलित हुए और अन्त में वे एक दिन उसी प्रकाश में निमीलित हो जाएंगे ।'

महाकवि ने अपने आपको इस सृष्टि-उत्सव की आनंद धारा का एक अभिन्न अंग मानते हुए उपनिषत्कालीन ऋषियों की सी गम्भीर वाणी में कहा था—

मुक्त आमि, स्वतंत्र आमि,  
नित्यकालेर आलो आमि,  
सृष्टि उत्सवेर आनंद धारा आमि  
अंकिचन आमि,  
आमार कोनो किछुई नेइ  
अहंकारे प्राचीरे घेरा ।

मैं मुक्त हूँ, मैं स्वतंत्र हूँ, मैं नित्यकाल का आलोक हूँ, मैं सृष्टि उत्सव की आनन्दधारा हूँ, मैं अंकिचन हूँ, अहंकार के प्राचीर से घिरा मेरा कोई कुछ नहीं है । अपनी इसी मानसिक स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखने के लिए कवि ने अन्यत्र कहा था—

महाकाल के सिंहासन पर स्थित है विचाराधिपति ! मुझे निरन्तर ऐसी शक्ति से, मेरे कंठ में वह बज्रवाणी दो कि मैं वीभत्सता पर और कुत्सित अनय पर कठिन प्रहार कर सकूँ, उसे धिक्कार सकूँ । शक्ति दो ऐसी कि जब यह भयार्त रुद्धकंठ शृंखलाजडित युग अपने भस्म-स्तूप में मूक होकर प्रच्छन्न हो, तब भी मेरी वाणी लज्जा-तूरित इतिहास के हृददेश में सदा स्पन्दित होती रहे ।

इसी प्रसंग में मानवता को नवीन चेतना से अनुप्राणित करने वाले और 'डा० जिवागो' जैसी श्रेष्ठ रचना पर नोबल-पुरस्कार प्राप्त करने वाले, रूस के प्रख्यात कवि और उपन्यासकार बोरिस पास्तरनाक की यह कविता याद आती है—

पिजरे में बन्द हिस्त पशु सदृश  
मैं एकाकी यहाँ खोया-खोया सा

जीवन और स्वतंत्रता से  
दूर अति दूर ।  
मार्ग एक ही, अंधानुकरण,  
अन्य चारा नहीं ।  
विच्छिन्न संबंध, भील के किनारे  
गहन अंधकार में खड़ा हूँ,  
ठूँठ समान, जो हो भोगूंगा ।  
एकाकी मन में उठता है प्रश्न  
मैं, जिसने मुख किया विश्व को  
मातृभूमि के सौन्दर्य से,  
लांछित क्यों ? आखिर क्यों ?  
किन्तु मृत्यु के अति निकट,  
मरणासन्न, एकाकी मन में,  
दृढ़ विश्वास एक—  
होगी विजय एक दिन  
सत्य की असत्य पर ।

परन्तु राष्ट्रों के इतिहास में ऐसे अवसर आते हैं जब रवीन्द्र और पास्तरनाक जैसे स्वतंत्र-चेता कवियों को भी लांछित होना पड़ता है । पर तब भी इन प्रतिभापुत्रों के मन से इस विश्वास को नहीं मिटाया जा सकता : 'होगी विजय एक दिन सत्य की असत्य पर ।' भय, आतंक और अन्धकार का वातावरण कितना ही घनीभूत क्यों न हो, पर सत्य की विजय का विश्वास ही कवि को कालजयी बनाता है । अधिनायकवादी अत्याचार के सम्मुख जैसे उसकी आत्मा नहीं झुकती, वैसे ही उसकी कलम भी नहीं झुकती । जब जलियां वाला बाग के भीषण अत्याचार से ब्रिटिश सत्ता ने राष्ट्र के स्वाभिमान को निर्ममतापूर्वक कुचल डाला था, तब भी रवि बाबू की अन्तरात्मा ने पराजय स्वीकार नहीं की थी और ब्रिटिश सरकार द्वारा दिया गया सर और नाइटहृड का किताब वापिस उसी सत्ता के मुँह पर दे मारा था । सरकार ने जिसे शीतल चन्द्रकिरण समझा था, वह तो दहकता

अंगारा निकला । शायद उन्हीं दिनों कवि ने 'चित्त जेथा भयशन्य' नामक अपना यह प्रसिद्ध गीत लिखा हो—जो आज श्री प्रत्येक राष्ट्र के लिए नन्दादीप का काम करता है—

जहाँ चित्त भयशून्य है  
और मस्तक गर्वोन्नत है  
जहाँ ज्ञान मुक्त है  
जहाँ शब्द सत्य की  
गहराई से निकलते हैं,  
उसी स्वाधीता के  
दिव्य लोक में हैं प्रभु ।  
मेरा यह देश जागे ।

कुछ लोग परमात्मा का अस्तित्व-बोध भी भय के माध्यम मे कराना चाहते हैं और इसीलिए परमात्मा के लिए 'भयानां भयं भीषणं भीषणानां' जैसे विशेषणों का प्रयोग करके मानव के मन में परमात्मा की कोई डरावनी सी सूरत पैदा करना चाहते हैं । पर आध्यात्मिकता की पहली ही सीढ़ी पर गीता का यह वाक्य लिखा हुआ है—

अभयं सत्वं संशुद्धिः ।

सच तो यह है कि भय की भावना कायरता की उपज है । जो जितना अधिक डरता है, वह उतना अधिक डराता है । जो डरता नहीं वह डराता भी नहीं ।

जब कारागार के द्वार खुल गए और देश में एक बार फिर भय से मुक्ति का नाद गूंज उठा, तब कर्तव्य की इतिश्रो समझ, आश्वस्त होकर बैठ जाने वालों के लिए, रवीन्द्र जयन्ती के दिन, कवि का यह गीत फिर सतत प्रेरणा का काम करेगा—

ओ रे मेरे राजहंस ! अभी पंख बन्द करने की बात क्यों  
सोच रहा है ? सामने जो दिखाई दे रहा है वह मर्मर ध्वनि से गुंजित  
मोहक वनभूमि नहीं है, यह तो अजगर के समान फूफकारता हुआ  
महासागर है । यह कुन्द कुसुमों से रंजित मनोरम कंज नहीं है, यह  
तरंगों के परस्पर घात-प्रतिघात से उत्पन्न फेन राशि का कुटिल अट्ट-

८६ :: ओ ! मेरे राजहंस

हास है । पुण्य-पल्लों से लहराती वनस्थली वाली तटभूमि अभी कहाँ  
आई ? तुम्हारा नीड़ कहाँ आया ? तुम्हें आश्रय देने वाली तरुणाखा  
कहाँ आई ? अरे ओ विहंग ! मैं जानता हूँ कि तेरे अंग में क्लान्ति  
उत्तर आई है, तो भी मेरे राजहंस । अभी पंख बन्द करने का समय  
नहीं आया ।



## ऐसी बही बयार !

अमरीका के अपदस्थ राष्ट्रपति रिचर्ड निक्सन ने एक घटना का उल्लेख किया है—“खुश्चेव के बंगले के हरे मखमली लॉन पर शानदार वृक्षों की छाया में हम भोज के लिए बैठ गए। व्यंजन परोसे जाने लगे। उस दिन खुश्चेव बहुत विनोदी मूड में थे। मेरी पत्नी पैट उनकी बगल वाली कुर्सी पर बैठी थी। मेज के दूसरी ओर मिकोयान बैठे हुए थे। जब उन्होंने पैट से बात करने की कोशिश की तो खुश्चेव ने उन्हें बीच में ही टोक दिया : ‘ऐ धूर्त आरमीनियन ! सुन लो, श्रीमती निक्सन पर अधिकार मेरा है। तुम बस टेबल के उसी ओर बने रहो।’ फिर मेरे के बीचों-बीच अपनी अंगुलि से लकीर खींचते हुए बोले—‘जानते नहीं, यह लौह आवरण है, खबरदार, इसके इधर-उधर कदम न रखना।’

यही विनोदी खुश्चेव जब अमरीका गए तब उससे पहले अपने देश में स्तालिन के समय की अनेक आतंकपूर्ण घटनाओं का रहस्योद्घाटन कर चुके थे। पार्टी की जिस बैठक में खुश्चेव ने स्तालिन की कट्ट आलो-चना की थी उसी बैठक में घटित एक छोटी-सी घटना के बारे में किसी अमरीकी पत्रकार ने जिजासा की। घटना यों थी—खुश्चेव के भाषण के अंश में पिछली सीटों से किसी व्यक्ति ने पूछा—“स्तालिन के समय के सौफनाक अत्याचारों का आपने विस्तार से वर्णन किया है। मिं खुश्चेव ! जिस समय ये अत्याचार हो रहे थे, उस समय आप क्या कर रहे थे ?” खुश्चेव ने कहा—“मैं सवाल ठीक ढंग से सुन नहीं सका हूँ, क्या प्रश्नकर्ता महोदय खड़े होकर अपना प्रश्न दुहराने की कृपा करेंगे ?” परन्तु कोई प्रश्नकर्ता खड़ा नहीं हुआ। तब खुश्चेव ने अपने अमरीका ओताओं को सम्बोधित करते हुए कहा—‘मैंने ठीक बही किया था

जो उन प्रश्नकर्ता सज्जन ने किया । मैंने अपना मुँह बन्द रखा ।'

भूतपूर्व उद्योग और नागरिक संभरण मंत्री श्री टी० अनन्त पै ने कांग्रेस महासमिति में जिस प्रकार कांग्रेसी नेताओं की आलोचना की है, उससे एक प्रश्न अवश्य पैदा होता है । इस प्रश्न का संबंध नैतिक साहस के साथ है । वह प्रश्न यह है कि जब कोई व्यक्ति यह देखे कि भयंकर रूप से गलत काम हो रहे हैं, तब क्या यह उसका कर्तव्य नहीं है कि वह खुलकर इसका विरोध करे और इसकी एवज में जो परिणाम भुगतना पड़े, उस भुगते । यह ठीक है कि जगजीवनराम की तरह निर्भयतापूर्वक चुनौती देने का नैतिक साहस सब में नहीं होता, पर यह भी सत्य है कि जो यह बहाना बनाते हैं कि हम उचित अवसर की तलाश में थे, उन्हें वह अवसर कभी नहीं मिलता । अवसर आकर निकल भी जाता है, और तलाश करने वाले वैठे ही रह जाते हैं । खेदपूर्वक यह स्वीकार करना चाहिए कि अधिकांश उच्च पदस्थ लोग कोयले की दलाली में अपने हाथ काले करने में ही अहोभाग्य समझते रहे ।<sup>३</sup> कभी महात्मा गांधी ने मिट्टी के पुतलों में जान फूंक कर ऐसे स्वर्ण-पुरुषों का निर्माण किया था कि उन्हें न तो दुर्धर्ष आततायी का आतंक डरा सकता था और न ही उन्हें किसी प्रकार का प्रलोभन सत्य-पथ से विचलित कर सकता था । गत आपातकाल में सबसे बड़ी उपलब्धि यही है कि उसने उन स्वर्ण-पुरुषों को फिर मिट्टी का माधो बनाकर रख दिया ।

यदि नहीं, तो यह कैसे संभव हुआ कि जिन लोगों ने देश की आजादी की खातिर बारम्बार कारावास की यातनाएँ सहीं, अपना सारा जीवन विदेशी शासन से संघर्ष में झोंक दिया और स्वयं अपने लिए कभी किसी ऐश्वर्य की कामना नहीं की, वे रातों-रात देशद्रोही करार दिए गए और बिना कोई कारण बताए जेल में डाल दिए गए । फिर चाहे वे अध्यापक थे, पत्रकार थे, सर्वोदयी कार्यकर्ता थे, संसत्सदस्य थे या निष्ठावान कांग्रेसी थे । इतना ही क्यों, जो कभी राज्यपाल रहे, केन्द्रीय मंत्री रहे और उपप्रधान मंत्री तक रहे—वे सब भी जेलों में नजरबन्द कर दिए गए । यह कैसा लोकतंत्र था जिसमें न वकील, न दलील, न अपील —किसी की भी गुंजाइश नहीं थी ।

और कल्पना करिए उस आतंक की, जब इस अन्धकार को प्रकाश कहने वालों के ठट्ठ के ठट्ठ जमा हो गए। ये ठट्ठ कैसे जुटाए गए थे —यह मत पूछिए। उन्मुक्त अधिनायकवाद को आदर्श लोकतंत्र सिद्ध करने के लिए अपनी अन्तरात्मा को कुचलने वाले, कदम-कदम पर आत्महनन करने वाले, क्षणिक स्वार्थों की खातिर सत्य को ठुकराने काले ये स्वर्ण-पुरुष मिट्टी के पुतले नहीं थे तो क्या थे ?

शायर यह कहता ही रह गया—

यह दस्तूरे जबां बन्दी  
है कैसी तेरी महफिल में।  
यहाँ तो बात करने को  
तरसती है जबां मेरी ॥

पत्रकार की कलम और शायर की जवान दोनों तरसते रह गए। और तब स्वयंभू और स्वयंसेवी चारणों की बन आई। जब यूरोप में हिटलर का बोलबाला था, निरंकुश नाजीवाद नग्न नृत्य कर रहा था, तब भी इस तरह का आतंक था या नहीं, नहीं कह सकते। पर कुछ बुनियादी बातों में समानता अवश्य है।

आपातकाल समाप्त होते ही यहाँ अब आपस में एक दूसरे पर दोषारोपण की होड़ लगी है। जैसे हरेक आत्मप्रवंचना के एक दीर से गुजर रहा है। कुछ लोग अपने आपको निर्दोष सिद्ध करने के लिए और जनता की नजरों में ऊँचा उठने के लिए तरह-तरह की कलाबाजियाँ खा रहे हैं। कैसा मासूम बहाना है—जब बैठक में अमुक निर्णय हुआ था तब हम तो उठ कर थोड़ी देर के लिए बाहर चले गए थे? जो उस समय 'चौकड़ी' के बाकायदा अंग रहे, अब चौकड़ी की आलोचना में वे ही सबसे आगे हैं।

आश्चर्य यह भी है कि उस समय के चमचा-शिरोमणि अब औरों को चमचा सिद्ध करने में अपनी कला का उपयोग कर रहे हैं। आपातकाल के दीरान सत्तारूढ़ दल के भंडाबरदार अब आज के भी सत्तारूढ़ दल के भण्डाबरदार बनने में औरों से आगे हैं। उनका धंधा वही का वही है, सिर्फ ढण्डे का भण्डा बदल गया है। आपातकाल के समर्थन

में बुद्धिजीवियों के हस्ताक्षर बटोरने वाले कविनेता अब ताजा कविताएँ लिखकर 'आपातकाल के दौरान लिखी गई' कविताएँ कहकर उनका पुरातत्वीय मूल्य बटोर रहे हैं।

जब यूरोप में नाजी आधिपत्य समाप्त हो गया तब फ्रांस, बेल्जियम तथा अन्य देशों के बुद्धिजीवियों में बारम्बार यह प्रश्न सुनाई देता था : "यदि तुम्हें भी वैसी स्थिति का सामना करना पड़ता तो तुम क्या करते ? शायद वही करते जो औरें ने किया । पर अब अपनी कायरता को खुले बन्दों स्वीकार तो करते । जो सचमुच कायर थे, वे अब यदि अपने आप को बहांदुर सिद्ध करने लगे, तो यह पतन की पराकाष्ठा है ।

खलीफा हारून रशीद ने राजाज्ञा से रात को राजधानी की सड़क पर चलना चार्जित कर दिया । सिपाहियों का पहरा लग गया । रात को सड़क सुनसान हो गई । लेकिन एक दिन एक आदमी बेखटके सड़क पर टहलता जा रहा रहा था । सिपाहियों ने रोका, कहा — 'तुम्हें शाही हुक्म की खबर नहीं है ?' उस आदमी ने कहा — 'मुझे खबर है । मगर तुम्हें भी यह खबर होनी चाहिए कि बड़े से बड़े अमीर, शहजादे और बादशाह मेरे आगे सिर झुकाते हैं ।' सिपाही रौब में आ गए और उन्होंने समझा कि यह सचमुच ही कोई बड़ा आदमी होगा, तभी शाही हुक्म की परवाह नहीं करता ।

वह आदमी तो धूम फिरकर वापिस अपने घर चला गया । अगले दिन सिपाहियों को पता लगा कि रात वाला वह आदमी खलीफा का नाई था । कुछ ऐसी बयार वही है कि अब खलीफा के नाई भी अपने आपको तीसमारवाँ सिद्ध करने में लगे हुए हैं ।



## एक मुँह, दो हाथ

जो एथेंस कभी यूनान की राजधानी था और विश्व-विस्थात सांस्कृतिक केन्द्र था, जिस एथेंस को सुकरात, अफलातून और अरस्तू जैसे महान् तत्त्ववेत्ताओं को अपनी गोद में पालने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था, उसी एथेंस की आधुनिक स्थिति के बारे में 'न्यूयार्क टाइम्स' ने विवरण दिया है।

कुछ दशक पहले एथेंस की आबादी कुछ हजार थी, आज उसकी आबादी तीस लाख है। नगर में इतनी नई-नई कालोनियाँ और इतनी ऊँची-ऊँची अट्टालिकाएँ बन गई हैं कि नगरवासियों की शान्ति भंग हो गई है, नगर का सौन्दर्य नष्ट हो गया है और उसका अपना व्यक्तित्व समाप्त हो गया है। मोटरों की और यातायात की इतनी भीड़ हो गई है कि पैदल चलने वालों की मुश्किल हो गई है। लोगों में यौनाचार बढ़ गया है। सम्मिलित परिवार प्रथा भंग हो गई है। बच्चों की उच्छृंखलता और अनुशासनहीनता वृद्धि पर है। इसके साथ ही एथेंस के आसपास के गाँव उजड़ गए हैं। असैया नामक एक ग्राम की आबादी कुछ दशक पहले एक हजार थी, अब केवल १५० है, उसमें भी युवकों की संख्या ५-६ से अधिक नहीं है। अधिकाँश लोग रोजगार की तलाश में पश्चिमी यूरोप, आस्ट्रेलिया या अमेरिका चले गए हैं।

संसार में बढ़ती हुई औद्योगिक सभ्यता के परिणाम प्रायः सर्वत्र इसी प्रकार के दृष्टिगोचर होंगे। भारत में भी गाँव धीरे-धीरे उजड़ रहे हैं और शहर धीरे-धीरे तुन्दिल होते जा रहे हैं। महानगरों की तो और भी अधिक दुर्दशा है। आजादी की गंगा शहरों तक आकर रुक गई, ग्रामवासियों तक नहीं पहुँच पाई। स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् ग्रामों के

विकास की जितनी योजनाएँ बनीं और जितना भी धन व्यय हुआ, उसका यथोचित लाभ नहीं हो पाया ।

उसका कारण समझने के लिए योजना आयोग के भूतपूर्व अध्यक्ष श्री हक्सर का यह कथन उद्घृत करना पर्याप्त होगा कि किसी गांव में एक बूँद पानी पहुँचाने के लिए ऊपर की टीपटाप में, स्टाफ और यातायात की व्यवस्था में कम-से-कम बारह हजार ८० व्यय करना पड़ता है ।

किसी भी विकास-कार्य पर खर्च किया गया धन कितना ठेकेदार और इंजिनीयरों की जेब में पहुँचता है और कितना वस्तुतः विकास कार्य में या उसमें लगे मजदूरों पर खर्च होता है, इसका हिसाब कौन लगाए ? ऊपर से सर्वशक्तिमान् राजसत्ता का प्रतिनिधि बड़ा अफसर, फिर छोटे अफसर, फिर अहलकार, फिर चपरासी, फिर अफसरों के चमचे और रिक्तेदार—ये सब कहाँ जाएँगे ! जब भगवान् छप्पर फाड़कर देता है तो इन्हीं के आँगन सूखे क्यों रहें ? हरेक को यह कहकर अपनाघर भरने की छूट है—‘मोरे अंगना क्यों ना बरसे !’

पर कोड में खाज की-सी स्थिति और कारणों से पैदा हो गई । एक तो स्वतंत्रता-प्राप्ति के पश्चात् जीवन-स्तर उन्नत करने की होड़ में लोगों की आकांक्षाएँ बहुत बढ़ गईं, दूसरे आवादी इस तेजी से बढ़ती चली गई कि लोगों का पेट भरने और उन्हें रोजगार देने के जितने भी प्रबन्ध किए गए—वे सब ओछे पड़ते चले गए । कहना चाहिए—

जस जस सुरसा बदन बढ़ावा ।

तासु दुगुन कपि रूप दिखावा ॥

जितना-जितना कृषि-उत्पादन और औद्योगिक उत्पादन बढ़ता गया, वह बढ़ती आवादी के अनुपात में ‘एक अनार सौ बीमार’ वाली स्थिति से नहीं उवर पाया । जिस देश में पहले एक सूई या एक बटन तक नहीं बनता था, उस देश में हवाई जहाज, जलपोत, विजयंत टैंक तथा आर्यभट तक की यात्रा कोई उपेक्षणीय बात नहीं । विशाल इस्पात कारखानों, दृहशक्ति सिचाई योजनाओं और विद्युत जेनरेटरों का निर्माण तथा सूक्ष्म टैक्नालाजी का निर्यात करने का सामर्थ्य भी गर्व करने की

चस्तु है। पर इस सच्चाई से कैसे मूँह छिपाएँ कि इस समस्त प्रगति के बावजूद और बीस सूत्री कार्यक्रम के धुग्राँधार प्रचार के बावजूद देश में बेरोजगारी कम नहीं हुई। विकास में वृद्धि की दर पर अर्थशास्त्रियों की वहस तव तक व्यर्थ है जब तक बेरोजगारी की समस्या का कारण तक हल नहीं निकाला जाता।

अब भी देश में लाखों किसान और भूमिहीन मजदूर ऐसे हैं जो दो वक्त का भोजन नहीं जुटा पाते। लगभग ६ करोड़ किसान अर्धवेरोजगारी के शिकार हैं। दो करोड़ लोग पूरी तरह बेरोजगार हैं। एक करोड़ लोगों के नाम तो काम दिलाऊ दफतरों में ही दर्ज है। और इन बेरोजगारों में ३० लाख मैट्रिक पास हैं, दस लाख ग्रेजुएट या पोस्ट ग्रेजुएट हैं और बीस हजार इंजिनीयर हैं।

देश में खनिज द्रव्य भरे पड़े हैं और वे अपने दोहन की प्रतीक्षा में हैं। गाँवों में पेय जल तक सुलभ नहीं—सिचाई के साधन तो दर किनार। सात लाख गाँवों में ऐसे खुशनसीव गाँव कितने हैं जहाँ सड़क या विजली पहुँची हो। नदियों की भी कमी नहीं—उनका तीन चौथाई पानी वहकर समुद्र में चला जाता है जो सिचाई के लिए उपयोग में लाया जा सकता है। देश में विपुल मात्रा में मानवीय श्रम उपलब्ध है। पर कितनी बड़ी विडम्बना है कि प्राकृतिक सम्पदा से भरपूर और मानवीय श्रम से ओत-प्रोत होते हुए भी देश गरीब है और करोड़ों लोग बेरोजगार हैं।

इस विडम्बना से बचने के लिए पिछली सरकार ने परिवार नियोजन पर इतना अधिक जोर दिया कि 'आचार' में 'अति' होने से वह सीधा 'अत्याचार' बन गया। अत्याचार भी इस हृद तक कि वह अत्याचारी को ही ले बैठा। परिवार नियोजन के सिद्धांत में कोई गलती नहीं थी, पर वह एक नकारात्मक उपाय था। परमात्मा जब किसी आदमी को पैदा करता है तब उसे एक मुँह और दो हाथ देकर भेजता है। दो हाथों से परिश्रम करके एक मुँह को भरना कठिन नहीं होना चाहिए। पर जो दो हाथों को रोजगार देने में असमर्थ रहे उन्होंने न सबंदी द्वारा एक मुँह को पैदा होने से रोकने में ही देश का भला समझा। नहीं नहीं, देश का नहीं, अपना भला। देश के साथ ६० करोड़ मुखों के दुगने हाथ अगर बेकार

रहेंगे तो उस राजसत्ता की क्या गति होगी जिसका नैतिक दायित्व है उन हाथों के लिए रोजगार की व्यवस्था करना । एक मुँह को जन्म लेने से रोकने की बात वही सोच सकता है जिसके पास दो हाथों के लिए कोई काम न हो । यदि दो हाथों के लिए काम की व्यवस्था हो सके तो चीन को छोड़कर संसार में सबसे अधिक जनसंख्या का दम भरने वाला यह देश अपनी जनसंख्या को अभिशाप के बजाय वरदान समझे ।

जनता पार्टी के चुनावों के दौरान रोजगार को नागरिक के मूल अधिकारों में शामिल करने की बात कही थी । जो सरकार अपने देश के नागरिकों को रोजगार नहीं दे सकती, उसे उनके लिए बेरोजगारी के भत्ते की व्यवस्था करनी पड़ेगी, अन्यथा उसे समाजवाद का नाम लेने का अधिकार नहीं । बेरोजगारी के भत्ते की व्यवस्था केवल समाजवादी देशों में ही नहीं, तथाकथित पूँजीवादी देशों में भी है ।

नई सरकार ने दस साल में देश से गरीबी दूर करने की बात कही है । बेरोजगारों को बड़े पैमाने पर रोजगार देने की अनेक योजनाओं पर विचार चल रहा है । न तो भारत कोई छोटा देश है, न ही उसकी जनसंख्या थोड़ी है, न ही यहाँ बेरोजगारों की कमी है, उस दृष्टि से दस साल की अवधि कोई बड़ी नहीं कही जा सकती । ‘दिवस जात नहिं लागर्हि वारा ।’ पर इसके लिए जनता पार्टी की सरकार और जनता में जो उभयनिष्ठ तत्त्व है (जनता), उसके हित को प्रमुख और व्यक्ति के हित को गौण रख कर ईमानदारी से प्रयत्न करना होगा । आचार्य कौटिल्य का कहना है—

प्रजा सुखं सुखं राज्ञः  
प्रजानां च हिते हितम् ।  
नात्मप्रियहितं राज्ञः  
प्रजाना तु प्रियं हितम् ॥

—प्रजा का सुख ही राजा का सुख है और प्रजा के हित में ही राजा का हित है । राजा को भी अपना हित प्रिय नहीं होना चाहिए, प्रजा का ही हित प्रिय होना चाहिए ।



## भागीरथी और नए भगीरथ

पौराणिक अनुश्रुति है कि ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को गंगा का अवतरण हुआ था। इतिहास की परिधि में न घिरने वाली घटनाओं को भी पुराणों ने किस प्रकार तिथि आदि के क्रम में बाँध दिया है, यह देखकर आश्चर्य होता है। विस्मय होता है उनके साथ जुड़ी गाथाओं को देखकर भी। उनके पीछे कोई आध्यात्मिक तथ्य है, या कोई पुरातात्विक रहस्य छिपा है, यह फैसला करना भी आसान नहीं है। परन्तु कभी-कभी इन पौराणिक गाथाओं के साथ पुरातात्विक घटनाओं का जैसा तारतम्य बैठता है, वह वैज्ञानिक मस्तिष्कों को भी चक्कर में डाल देता है।

बंगला भाषा के कवि कृत्तिवास ने अपनी रामायण में लिखा है कि गंगा और उमा दोनों सहोदरा थीं। देवता लोग भगवान शंकर के लिए गंगा की याचना करने उसके पिता हिमवान के यहाँ पहुँचे। माता मैना और पिता हिमवान दोनों में से कोई भी उस समय अपने निवास स्थान पर नहीं मिले। पर गंगा तो शिव जी का नाम सुनते ही अधीर हो उठीं और माता-पिता की प्रतीक्षा किए बिना ही देवताओं के साथ हो लीं। जब मैना और हिमवान को गंगा की इस अशिष्ट स्वेच्छाचारिता का पता लगा तो दोनों कुद्ध हुए। मैना ने शाप दिया कि उसका यह पतन उसे सदा के लिए पतनोन्मुखी बनाकर जल वा रूप दे दे। विचारी गंगा निरादृता होकर कहाँ जाए। उसे ब्रह्मा के कमण्डल में शरण मिली।

क्या है यह ब्रह्मा का कमण्डल ? यदि कोई कवि गोमुख के २५ किलोमीटर लम्बे ग्लेशियर को ब्रह्मा के कमण्डल की उपमा दे, तो उसकी प्रतिभा की दाद देनी होगी। ब्रह्मा का अर्थ तो है ही विस्तार। विस्तृत और महान हिमालय में—जहाँ और सैकड़ों ग्लेशियर छाए हैं, गोमुख

का ग्लेशियर एक कमण्डल से अधिक थोड़े ही है ।

गोमुख के ग्लेशियर से निकल कर—स्वर्गलोक से उतर कर—जब गंगा गंगोत्री में आती है, तब हिम के पिघलने से द्रवीभूत जलधारा के वेग को सिवाय शिवजी के और कौन संभाले ? गंगोत्री की पर्वत-शृंखला शिवाजी की इतस्ततः विखरी अलकें ही तो है, इसीलिए तो शिवालक (शिव + अलक) नाम पड़ा है । गंगोत्री में ‘गंगा शिवजी की अलकों में’ उलझ कर रह गयी, इस प्राकृतिक घटना को कवि की आँख से देखने पर फिर पौराणिक प्रतिभा चमत्कृत करती है ।

गंगा को त्रिपथगा कहा गया है । उसकी तीन मुख्य धाराएँ हैं—अलकनन्दा, जान्हवी और मन्दाकिनी । सामान्यता ये तीनों नाम गंगा के पर्यायवाची माने जाते हैं । पर गढ़वाल निवासी जानते हैं कि ये तीनों अलग-अलग धाराएँ हैं और तीनों के मिल जाने पर भगीरथ गंगा कहलाती हैं । क्या जान्हवी, मन्दाकिनी और अलकनन्दा—इन तीनों धाराओं को एक में मिलाने का महान और स्मरणीय कार्य किसी भगीरथ नाम के कुशल इंजिनीयर ने किया था ? शायद उस भगीरथी की स्मृति को अक्षुण्ण रखने के लिए ही इसे भगीरथी नाम दिया गया हो ।

पौराणिक गाथा है कि जब गंगा ने भगीरथ का अनुगमन करते हुए जहाँ ऋषि के यज्ञपात्र वहां दिये, तो ऋषि ने कुद्ध होकर गंगा का आचमन करके उसे उदरस्थ कर लिया । भगीरथ के बहुत अनुनय-विनय करने पर जहाँ ने गंगा को कान से निकाल दिया और तब से गंगा का नाम जाह्नवी पड़ गया ।

इसका पुरातात्त्विक अर्थ यह है कि नेलंग दर्रे से आने वाली जाह्नवी जब भैरों घाटी से गुजरती हुई भाला नामक झाँच के पास से गुजरी तो कुछ चट्ठानों के टूटकर गिर पड़ने से उसका प्रवाह रुक गया और वहाँ भाला से धराली तक एक भील बन गई । अब से वीस वर्ष पहले लुहारीनाग के पास भी इसी प्रकार की एक भील बन गई थी । क्या यह जहाँ द्वारा गंगा का आचमन नहीं है ?

प्रकृति में इस प्रकार की घटनाएँ कभी-कभी घटित होती रहती हैं । अभी आठ साल पहले की घटना है अलकनन्दा की सहायक विरही नामक

दी से इसी प्रकार एक गोहाना भील बनी हुई थी। अचानक शेषनाग ने करवट ली, तो गोहाना भील समेत पूरा पर्वत खण्ड ही उलट पड़ा और गंगा के साथ वह चला। गोहाना भील तो नामशेष हो ही गयी, पर गंगा ने भी ऐसा प्रलयंकर रूप धारण कर लिया कि उस समय प्रब्रह्म के साथ वहकर आए मिट्टी-पत्थर-रेत से गंगा नहर बुरी तरह पट गई। उसकी सफाई में करोड़ों रु. व्यय करना पड़ा। गंगा नहर के दोनों ओर पड़े उस रेत के ढेर आज भी सन् १९६८ की उस भयंकर घटना की याद दिलाते हैं।

प्रकृति में यह विपर्यय चलता रहता है। पर गंगा जब से गंगोत्री से निकली है, तब से अनेक प्राकृतिक विपर्यय सहते हुए भी उसने पीछे मुड़कर नहीं देखा। वह लगातार आगे ही आगे भागती चली गई। पहाड़ों से मैदान और मैदानों से गंगा सागर तक की उसकी यात्रा एक अजेय जय-यात्रा है। ब्रह्मा के कमण्डल से निकलकर विष्णु के क्षीर-सागर तक, एक विस्तार से दूसरे विस्तार तक की उसकी जय-यात्रा इस देश की जीवन-यात्रा भी है। वह जलधारा ही नहीं, हमारी जीवन-धारा भी है। हमारा लोक-जीवन और परलोक-जीवन उसी के सहारे पनपते रहे हैं।

भारत के मनीषियों की मान्यता रही है कि जब तक विज्ञान और अध्यात्म का समन्वय नहीं होगा, तब तक मानव जाति का कल्याण नहीं होगा। जो भागीरथी अब तक अध्यात्मपिपासुओं की शरण स्थली बनी रही, उसी भागीरथी को अब नए भगीरथों ने विज्ञान और उद्योग के साथ मिला कर एक उजर्स्थली बनाना प्रारम्भ कर दिया है।

वेदान्तियों के बादशाह स्वामी रामतीर्थ इस सदी के प्रारम्भ में टिहरी से दसेक किलोमीटर दूर वमरोली गुफा में आकर रहने लगे थे। उनके स्वर्गवास के कई साल बाद एक बंगाली साधु उस गफा में आकर रहने लगा। वह साधु कुछ नक्शे बनाता रहता था और गाँव बालों से कहता रहता था कि यहाँ से भागीरथी को सुरंग में ढालकर बिजली बनाई जाएगी। लोग कहते थे कि साधु पागल है। क्योंकि तब तक इस प्रकार की कल्पना भी खामखयाली भर थी। पर उस ‘पागल साधु’ की

## ६८ :: ओ ! मेरे राजहंस

वाणी में भी भारत का भविष्य बोल रहा था। केवल उस बमरोली गुफा के निकट ही नहीं, हरिद्वार से लेकर गंगोत्री और बदरीनाथ तक भागीरथ के प्रभाव का सर्वेक्षण हो गया। विद्युत उत्पादन की, जलाशयों के निर्माण की और सिचाई के साधन तैयार करने की अनेक बड़ी-बड़ी योजनाएं बन गईं और उन पर धड़ाधड़ काम प्रारम्भ हो गया।

मनेरी-भाली जल विद्युत परियोजना का प्रथम चरण पूरा हो गया है। नदी के पानी के प्रवाह को मोड़ने के लिए उत्तरकाशी, मनेरी और हीना—इन तीन स्थानों से सुरंग खोदी जा रही है। उत्तरकाशी जिले में ही पाला-मनेरी जल विद्युत योजना चालू है। पाला से आगे लुहारी-नाग में भी एक बैराज और सुरंग बनाने की योजना है। कृष्णकेश और हरिद्वार के बीच वीरभद्र में बैराज, विद्युत गृह और नहर बनाने की योजना है। इस नहर की विशालता का अन्दाज इसी बात से लगाया जा सकता है कि उसमें बीस हजार घन-फुट पानी की क्षमता होगी जबकि गंग नहर में दस हजार फुट पानी की क्षमता है। भागीरथी और भिलंगना के संगम पर विशाल टिहरी बांध परियोजना चालू है। इन सब परियोजनाओं पर हजारों श्रमिक अर्हनिश काम पर लगे हुए हैं और इन पर अरबों रु० व्यय होने वाला है।

नए भगीरथों के प्रताप से सारी भागीरथी धाटी का रूप-रंग बदलने वाला है भागीरथी हमारे वर्तमान की ही नहीं, भविष्य की भी जीवन-धारा सिद्ध होने वाली है।



## कारावास का वरदान

प्रतिभा जन्मजात होती है या श्रम से अर्जित की जाती है—यह चिरन्तन विवाद का विषय है। किसी भी प्रकार की दैवीय शक्ति में विश्वास करने वाले लोग प्रतिभा को भी लोकोत्तर शक्तियों का वरदान मानते हैं और वैसी शक्ति में विश्वास न करने वाले विज्ञानोन्मुख लोग उसे किसी जीव-विशेष का, या अमुक रासायनिक द्रव्यों की मस्तिष्क में रासायनिक प्रक्रिया का, परिणाम मानते हैं। शायद इन दोनों दृष्टियों में समन्वय करने के लिए ही किसी ने कहा है—किसी भी मनुष्य में ‘इन्सपिरेशन’ केवल एक प्रतिशत ही होता है, निन्यानवे प्रतिशत तो केवल ‘पर्सपिरेशन’ (पसीना) होता है।

जब कहा जाता है कि कवि पैदा होते हैं, बनाए नहीं जाते, तब उसमें भी प्रतिभा को जन्मजात मानने की बात ही ध्वनित होती है। पर यदि रत्नावली ने तुलसीदास को ‘अस्थि चर्ममय देह मम’ कहकर राम की भक्ति की ओर न मोड़ा होता, या विद्योत्तमा ने कुन्दजहन कालिदास के मुँह से ‘उट् उट्’ शब्द सुनकर उसे विद्याग्रहण के लिए योग्य गुरु के पास जाने को प्रेरित न किया होता, तो इन महाकवियों की जन्मजात प्रतिभा का भी क्या पता लगता?

तो कहना चाहिए कि अनुकूल परिस्थिति मिलने पर सामान्य व्यक्ति में भी प्रतिभा के अंकुर फूट सकते हैं और प्रतिकूल परिस्थिति में प्रतिभाशाली को भी लकवा मार सकता है।

रही अनुकूल परिस्थिति की बात। जिसे जन-सामान्य प्रतिकल परिस्थिति का नाम देना चाहेगा, विशिष्ट व्यक्तियों के लिए वही अनुकूलतम परिस्थिति बन सकती है। समरसेट माम कहा करते थे कि

लेखकों के लिए वीमारी का समय आदर्श है। जब आप किसी अस्प-  
में स्प्रिगदार विस्तर में आराम से पड़े हों, वातानुकूल यंत्र कक्ष को शिमले  
का होटल और कश्मीर का हाउस बोट बना रहा हो, सुन्दर अमल-  
धवल स्वच्छ परिचारिकाएं आपकी सेवा में लगी हों, सवेरे-शाम योग्य  
डाक्टर आपकी मिजाजपुर्सी के लिए आते हों, और समय पर नाश्ता,  
समय पर खाना और समय पर विश्राम और समय पर दवाई की  
व्यवस्था हो, तो साहित्यिक कार्य के लिए यह आदर्श परिस्थिति है।  
जब तन को पूर्ण विश्राम मिल रहा हो, मन को 'शुतुर वेमुहार' की  
तरह इधर भटकने की छूट हो, और दिमाग किसी भी प्रकार की जिम्मे-  
दारी के बोझ से सर्वथा मुक्त हो, तो अकवि भी कवि बन जाए, तो  
आश्चर्य नहीं—

कोई कवि बन जाए

सहज सम्भाव्य है।

प्रतिभा के प्रस्फुटन के लिए केवल रोगशय्या ही सहायक नहीं होती,  
कारावास भी वड़ा सहायक होता है। कारावास के एकान्त में पहुँचकर  
उनकी वाणी से भी सरस कविता फूटने लगती है जो जनसम्पर्क में  
सदा अपनी अरसिकता के लिए विख्यात रहे हैं।

भला राजनैतिक नेताओं को ललित साहित्य से क्या काम !  
उन्होंने तो 'सांस्कृतिक कार्यक्रम' के नाम से जिस नाटक मुशायरे का  
उद्घाटन कर दिया, उनकी वही चरम साहित्य-सेवा हो गई। दिन-रात  
राजनीतिक अखाड़ेबाजी के कर्णभेदी कोलाहल में कमनीय कविता-  
कामिनी का कोमल पदविन्यास कहाँ संभव है।

पर जो लोग पहले से ही सरस्वती के उपासक रहे हैं, उनके लिए  
तो कारावास जैसे अयाचित वरदान है। काले पानी की काल कोठरी  
में, जहाँ कागज-कलम-दवात का दर्शन भी दुर्लभ था, वहाँ अपनी  
तनहाई क्षणों में बीर विनायक दामोदर सावरकर ने जेल की दीवार  
पर ही नाखूनों से खुरच-खुरच कर कविताएँ लिख डालीं। लोक-  
मान्य तिलक को राजद्रोह के अभियोग में माण्डले की जेल में क्या  
बंद किया गया कि कृष्ण मंदिर में बैठकर उन्होंने गीता पर कर्मयोग-

परक अपना अद्भुत भाष्य लिख डाला ।

दूर क्यों जाते हैं—स्वर्गीय पंडित जवाहरलाल नेहरू को यदि इतने वर्ष जेल में रहने का अवसर नहीं मिलता, तो क्या संसार उनकी 'हिन्दुस्तान की कहानी' 'विश्व इतिहास की भलक' और 'पिता के पत्र पुत्री के नाम' जैसी साहित्यक दृष्टि से भी पायेदार पुस्तकों से बंचित न रह जाता !

वर्नाड शा ने कभी कहा था कि जब तक कोई व्यक्ति जेल में नहीं जाता तब तक उसकी शिक्षा पूरी नहीं होती । स्वातंत्र्य-संघर्ष के दिनों में तो भारतीय नेताओं के लिए यह बात अक्षरशः सही थी ही, स्वतंत्र-भारत में भी आपातकाल के दौरान यह बात पराधीनतायुग से भी अधिक सही निकली । इसीलिए तो लोक सभा और विधान सभाओं के चुनावों में जेल यात्रा ही योग्यता की सबसे बड़ी कसौटी बन गई । जो पहले ही योग्य थे, कारावास ने उनकी योग्यता पर सान चढ़ा दी, जो मन्द थे उनको अदलम्ब बना दिया और जो कुन्द थे, उन्हें कुन्दन बना दिया ।

तमिलनाडु के नए राज्यपाल श्री प्रभुदास टट्टवारी ने हाल में ही एक रहस्योद्घाटन किया है । जब वे बड़ौदा डाइनामाइट काण्ड के सिलसिले में जार्ज फनर्णडीज के साथ जेल में बन्दी थे तो दोनों मिल-कर श्रीमद्भगवद् गीता और रामायण का अखण्ड पाठ किया करते थे । जेल का प्रताप देखिए कि जार्ज फनर्णडीज ईसाई हैं, पर पाठ करते थे वे गीता और रामायण का ।

और फनर्णडीज के बारे तो जेल का चमत्कार एकदम कल्पनातीत है । कहाँ कनटिक का निवासी यह गैर हिन्दू, जो अपने चुनाव-क्षेत्र मुजफ्फरपुर (विहार) में एक दिन तो क्या, एक क्षण के लिए भी जा नहीं सका—गया तो केवल उसका बन्दी अवस्था का पुतला, और उस निर्जीव पुतले ने ही जीवित महारथियों को वराशायी करके फनर्णडीज के मस्तक पर चन्दन-चर्चित जयतिलक लगा दिया ।

कारावास का एकान्त व्यक्ति को या तो पागल बनाता है, या आत्म-चिन्तक । कारावास व्यक्ति के सिर को इतना समर्थ बनाता

है कि कर्मक्षेत्र में वह विजय का सेहरा सहार सके, या रोग-जर्जर होकर मृत्यु के निकट पहुँच जाए। कारावास चित्त को इतना निर्भल बनाता है कि आपसी मतभेद भूलकर देशहित के लिए एक राजनैतिक दल का निर्माण करवा सके, या अपने अहं में ही सिमटकर रह जाए।

और हाँ, प्रतिभा के विकास का भी वह अद्भुत स्थल है—पर उसी के लिए जिसे वह रास आ जाए। अपने प्रधान मंत्री मोरारजी भाई को ही ले लीजिए। वे तो जब भी जेल में गए, हमेशा अपना वजन बढ़ाकर और स्वास्थ्य पहले से और बेहतर बना कर ही बाहर आए।

जिन दिनों मोरारजी भाई सोहना के सरकारी बंगले में नजरबन्द थे, उन्हीं दिनों की एक बात कही जाती है। आपातकाल के एक प्रमुख तानाशाह मोरारजी भाई से मिलने गए और कुशल-क्षेम पूछने के बाद कहा—‘इतनी भयंकर गर्मी में आपको वातानुकूलन यंत्र की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती ? आप कहें तो एयर कण्डीशनर लगवा दिया जाए ?’

मोरार जी भाई ने कहा—‘मुझे तो कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। आप जरूरत समझते हों तो लगवा दीजिए।’

तानाशाह बोले—‘वाह, बन्दी आप हैं, मैं नहीं। आपको जरूरत हो तो बताइए।’ मोरारजी भाई ने उसी शान्त भाव से कहा—‘मैंने तो आप से कहा न कि मुझे जरूरत नहीं। पर अगर कभी अचानक मेरे स्थान पर आपको यहाँ आना पड़े, तब आपको परेशानी न हो, इसलिए आप वातानुकूलन की व्यवस्था करना चाहें तो कर सकते हैं।’

इस बात में पता नहीं सचाई कितनी है, पर प्रतिभा का प्रकाश तो इसमें है ही। मोरारजी भाई को पत्रकार लोग ‘रेजरशार्प प्रतिभा वाला’ व्यक्ति बताते हैं। कौन कह सकता है कि इस ‘शार्पनेस’ में कारावास का कोई योग नहीं है।

□

## हे आषाढ़ के मेघ !

प्राकृतिक मौसम के साथ-साथ एक राजनीतिक मौसम भी होता है। और देश की राजधानी में जब इन दोनों मौसमों का उत्ताप चरम सीमा पर पहुँच गया तो बेचैनी स्वाभाविक थी। जून के इस मध्य में तभी अचानक आषाढ़ के प्रथम-दिवस के मेघ का स्मरण हो आया। 'आषाढ़स्य प्रथम दिवसे' की स्मृति के साथ जुड़ा है मेघदूत, मेघदूत के साथ कालिदास, कालिदास के साथ मन्दाक्रान्ता छन्द में मन्द-मन्द बहती काव्य-तरंगिणी !

राजधानी में उर्जा-संकट है, इसलिए 'सर्वत्र वातानुकूलन यंत्र बन्द हैं। और जैसे देश के उद्धार की योजनाएँ वातानुकूलित कक्षों में तैयार होती हैं, वैसे ही काव्यचर्चा भी वातानुकूलित पानगृहों में ही शोभा देती है। यहाँ शरीर में पसीने की धाराएँ ऐसे चल रही हैं जैसे शरीर न हो, पंचनद प्रदेश हो, ऐसे माहौल में काव्य की तरंग भंग के अभ्यासियों को ही शोभा देगी। इसलिए काव्य की नहीं, व्याकरण की बात करो, कालिदास की नहीं पाणिनि की बात करो।

भारत के सीमान्त पर, काबुल तथा सिन्धु नदी के सन्धिकोण पर स्थित शलातुर नामक ग्राम में जन्मे महर्षि पाणिनि को लोगों ने केवल नीरस वैयाकरण ही समझा है। पर उनके मन में किस प्रकार काव्य की हिलोर उठती रहती थी, उसका प्रमाण है उनका यह श्लोक—

क्षपां क्षामीकृत्य प्रसभमपहत्यांबु सरितां  
प्रताप्योर्वी कृतस्नां तरु गहन मुच्छोष्य सकलम् ।  
कव सम्प्रत्युष्णांशुः गत इति तदन्वेषण परा:  
तडिद्दीपालोका दिशि दिशि चरंतीव जलदाः ॥

—रातों को दुबला कर दिया, नदियों का पानी जवर्दस्ती छीन लिया,  
सारी धरती को भयंकर गर्मी से तपा डाला, वृक्ष-वनस्पति सब सुखा  
डाले—जिस दस्युराज दिनकर ने यह सब किया है, अब वह भागकर  
कहाँ छिप गया है, यही तलाश करने के लिए ये बादल अपने हाथों में  
विद्युत रूपी दीपक लेकर चारों तरफ घूम रहे हैं ।

कमाल किया है पाणिनी ने भी ! यह प्रचण्ड-ताप उष्णांशु सूर्य का  
वर्णन है या आपातकाल के दौरान की गई ज्यादतियों पर सूर्य के नाम  
से अन्योक्ति है ? बदा विधान सभाओं के चुनाव अपने हाथों में दीपक  
लिए उसी आततायी सूर्य का अन्वेषण करने वाले बादलों का स्थानापन्न  
नहीं है ? पता नहीं, है या नहीं । पर इन चुनावों की ओर आपातकाल-  
पीड़ित जनों की आँखें वैसे ही लगी हुई हैं जैसे इस देवमातृक देश में  
कृषिजीवी किसान की आँखें मेघ की ओर लगी होती हैं ।

जब अन्योक्ति की बात आ गई तो एक अन्योक्ति और सही ।  
संस्कृत के कवि का कहना है—

चितर वारिद वारि दवातुरे  
चिर पिपासित चातक पोतके ।  
प्रचलिते मरुति क्षणमन्यथा

कव नु भवान् कव पयः कव च चातकः ॥

—हे मेघ ! दावागिन से झुलसे और चिरकाल से प्यास पीड़ित इस  
चातक-शिशु पर दया कर वारि-वर्षा करो । अभी तो अनुकूल हवा बह  
रही है । यदि इस हवा का रुख बदल गया तो तुम कहाँ, पानी कहाँ  
और विचारा चातक कहाँ !

राजनीतिक मौसम के मेघों के लिए यह कितनी बड़ी चेतावनी है  
—अभी तो जनता-हवा चल रही है, इसलिए प्यासे चातक पर जितना  
उपकार कर सको, कर लो । इस हवा का रुख बदलते भी देर नहीं  
लगती । रुख बदल गया तो न तुम रहोगे, न तुम्हारा शासन रहेगा  
और तृपार्त चातक के समान जन-सामान्य की क्या गति होगी, भगवान  
जाने !

महाकवि कालिदास के कृतित्व की महानता वेशक ‘अभिज्ञान

शाकुन्तल' या उनके महाकाव्य 'रघुवंश' पर टिकी हो, पर जिस कृति ने उन्हें जन-जन का हृदय-सम्राट बना दिया, वह तो मेघदूत ही है। इसका मूल कारण यह है कि वियोग-श्रृंगार के इस खण्ड काव्य में विरह-पीड़ित हृदय का अन्तर्जगत् इस ढंग से उद्घटित होता है कि उसमें प्रत्येक मनुष्य को अपनी व्यथा ही प्रतिध्वनित होती दिखाई देती है।

फिर उसमें भारत के भूगोल का जैसा सरस काव्यात्मक वर्णन हुआ है, वह भी धरती-पुत्रों को अपनी और आकर्षित किए बिना नहीं रहता। पग-पग पर भारत के वृक्ष-वनस्पति, नदी-पहाड़, पशु-पक्षी और विभिन्न प्रदेशों के स्त्री-पुरुष अपने पूरे आंचलिक रंग में इस खण्ड काव्य में उपस्थित होते हैं।

यों सच पूछो तो, प्रत्येक मानव क्या शापग्रस्त यक्ष नहीं है जिसे उसके प्रमादवश किसी अलकाधिपति कुबेर ने अलकापुरी से निष्कासित कर दिया है और वह पुनः अलकापुरी में अपनी प्रिया से मिलने को आतुर है? वही 'पैरेडाइज लॉस्ट' और 'पैरेडाइज रिगेन्ड' वाली बात है।

कालिदास कोरे कवि नहीं हैं। वे यथार्थ के साथ अपनी कल्पना का जिस चतुराई से मिश्रण करते हैं उससे सहृदय रसिकों के लिए एक अनोखा 'आपानक' तैयार हो जाता है। और 'उपमा कालिदासस्य' तो विश्व-विरुद्ध्यात् है ही। कैलाश को 'देवांगनाओं का दर्पण' और 'व्यम्बक का राशीभूत अट्टहास' कहना और मेघ को 'कृषकों का सौभाग्य' नन्दी के सींग पर लगे पंक 'धरती के गौर स्तनाग्र पर श्याम चन्दन' कहना और इन्द्रधनुष-युक्त मेघ को मयूर-पिच्छधारी श्रीकृष्ण से उपमा देना या उसे वसुन्धरा के गले में पड़ी मोतियों की माला के मध्य जड़ी इन्द्रनीलमणी बताना कालिदास के ही बस का है।

पर इस कल्पना-कौशल से आगे बढ़कर कालिदास में वैज्ञानिक के भी लक्षण घटित होते हैं, यह देखकर आश्चर्य होता है।

आषाढ़ के प्रथम दिवस के मेघ को दूत बनाकर महाकवि ने जो कथा-सूत्र गढ़ा है, उसकी एक विशेषता और भी है। ऋतु विज्ञानियों नेखोज करके पता लगाया है मेघदूत में रामगिरि (नागपुर के पास

## १०६ :: ओ ! मेरे राजहंस

रामठेक पर्वत) से लेकर कैलाश के निकट स्थित अलकापुरी तक के मार्ग का जो वर्णन कवि ने किया है, वह केवल कल्पना-प्रसूत नहीं है, प्रत्युत मध्य जून—खास तौर से १४ और १५ जून—को अरब सागर से उठे मानसून के बादल का दक्षिण भारत से लेकर उत्तर भारत की ओर प्रयाण का मार्ग ऐन वही होता है, जो मेघदूत में वर्णित है।

हे आषाढ़ के मेघ ! हम सब शापंग्रस्त यक्ष हैं, अलकापुरी से निष्कासित । हम सब की प्रियतमाएँ अलकापुरी में हमारी प्रतीक्षा कर रही हैं । हमारा संदेश उन तक नहीं पहुँचा सकोगे ?

कष्ट के लिए अग्रिम धन्यवाद !



## क्रांति का एक और चरण

अध्यात्म-पिपासु एक सम्राट् एक साधु के पास पहुँचा और उससे परमात्मा की प्राप्ति का उपाय पूछा। साधु ने कहा कि कुछ दिन मेरी झोंपड़ी में आकर रहो तो तुम्हारी इच्छा पूरी हो सकती है।

राजा साधु की झोंपड़ी में आकर रहने लगा। साधु ने राजा से कहा—कल से तुम्हारी शिक्षा शुरू होगी। शिक्षा बड़ी विचित्र है। तुम खाना खा रहे होगे, नहा रहे होगे या कोई भी काम कर होगे, तब तुम्हें बिना बताए मैं चुपके से हमला करूँगा—लकड़ी की तलवार से। पता नहीं, मैं कब हमला कर बैठूँ। तुम्हें सिर्फ अपना बचाव करना है, जब भी मैं हमला करूँ, तुम ढाल पर उस बार को ओट लेना, नहीं तो तुम्हें चोट लग सकती है।

यह कैसी शिक्षा है—राजा हैरान हुआ। पर गुरु का आदेश सिरमाथे। राजा प्रतिक्षण सावधान रहने सगा—पता नहीं, किस क्षण हमला हो जाए। गुरु जब भी हमला करता, देखता कि राजा बार को ढाल पर ओटने के लिए तैयार है। लगातार चौकन्ना रहने के सात दिन के अन्दर ही राजा के अंजर-पंजर ढीले हो गए। पर धीरे-धीरे उसके अन्दर कोई ऐसी चीज जागृत होने लगी जो उसे हमले की पूर्व सूचना दे देती और वह ढाल लेकर तैयार हो जाता और हमले से बच जाता।

जब साधु ने देखा कि राजा इस पाठ में पक्का हो गया, तो कुछ दिन बाद कहा कि अब तुम्हारा दूसरा पाठ शुरू होगा। और वह पाठ यह है कि अब तक मैं दिन में हमला करता था—जब तुम जाग रहे होते थे, कल से मैं रात में हमला करूँगा—जब तुम सो रहे

होगे । तुम्हें सोते-सोते भी अपना बचाव करना है ।

राजा बड़ा हैरान हुआ । सोते हुए कैसे पता लगेगा कि कोई हमला करने वाला है । खास कर गहरी नींद में तो वाहरी दुनिया का कुछ भी आभास नहीं रहता । पर मनुष्य भी बड़ा विचित्र जीव है । इसमें पता नहीं, कहाँ क्या छिपा हुआ है । अगले दिन से साधु ने रात में हमला करना शुरू कर दिया । पर साधु क्या देखता कि नींद में भी राजा के हाथ ढाल लिए अपने बचाव के लिए सन्नद्ध हैं ।

सप्ताह भर के निरन्तर तनाव से राजा की नसें जकड़ गईं । पर धीरे-धीरे उसे यह अभ्यास हो गया कि रात के अन्धेरे में जब भी गुरु हमला करने आता तो राजा उठ बैठता और कहता—गुरुदेव ! मारने का कष्ट न करें, मैं जाग रहा हूँ ।

जब नींद में भी हमला करना मुश्किल हो गया, तो गुरु ने समझ लिया कि अब राजा का दूसरा पाठ पूरा हो गया है, इसलिए तीसरे पाठ की तैयारी करनी चाहिए । तीसरा पाठ क्या होगा ? साधु ने कहा—राजन ! अब तक मैं काठ की नकली तलवार से हमला करता था, पर कल से मैं असली तलवार से हमला करूँगा । और उसमें रात और दिन का कोई फर्क नहीं होगा—न जाने कब हमला कर बैठूँ । इसमें तुम एक बार भी चूक गए तो तुम्हें जान से हाथ धोना पड़ेगा—यह समझ लो ।

असली तलवार से हमला ! वो भी बिना बताए ! और दिन व रात में कभी भी ! वह तो सचमुच ज्यादती थी ! पर इसके बिना शिक्षा पूरी नहीं होगी ।

चमत्कार देखिए कि राजा के शरीर को नकली तलवार के बारे को कभी-कभी आहृत कर भी गए थे, पर असली तलवार का एक भी बार राजा के शरीर को आहृत नहीं कर सका । जब यह निश्चय हो जाए कि एक बार भी चूका तो जान गई, तो कोई नहीं चूकना चाहेगा । आदमी तभी तक चूकता है जब तक उसे पता रहता है कि मैं चूक गया तो कुछ जाएगा नहीं ।

उक्त तीन पाठों के साथ राजा ने सतत जागरूक रहने का अभ्यास

कर लिया। उसकी शिक्षा पूरी हुई। अगले दिन उसे अपने गुरु से विदा लेनी थी।

नए दिन का नया सूरज निकला। राजा का मन अपने गुरु के प्रति श्रद्धा से अभिभूत था। पर विदा लेने के कुछ क्षण पहले राजा के मन में एक विचार आया। उसने सोचा—जिस गुरु ने मुझे इतना बचाया है कि एक क्षण का भी प्रमाद नहीं करने दिया और सतत जागरूक रखा, वह गुरु स्वयं कितना सधा हुआ है—असली साधु है या नकली—यह भी देखना चाहिए। मैं भी पीछे से हमला करूँ और देखूँ कि यह कितना सावधान है।

वृद्ध साधु भोपड़ी के बाहर कुछ दूर एक दररूत के नीचे बैठा कुछ स्वाध्याय कर रहा था। राजा ने भोपड़ी में रखी तलवार की ओर हाथ बढ़ाया ही था—उसे छू भी नहीं पाया था कि साधु ने दूर से ही चिल्ला कर कहा—वेटा ! ऐसा मत करना, मैं बूढ़ा आदमी हूँ।

राजा यह देख कर चकित हो गया कि अभी मैंने कुछ किया नहीं और इस साधु को मेरे मन के इरादे का पहले ही पता लग गया। साधु ने उसे समझाया कि जब चित्त सर्वथा अहंकार शून्य हो जाता है तब उसमें औरों की पद-ध्वनि ही नहीं, औरों के विचार भी सुनाई पड़ने लग जाते हैं। जब चित्त इतना निर्मल, शांत और जागरूक हो जाता है, तभी उसमें अदृश की भलक मिलती है, तभी उसमें प्रभु की पग-ध्वनि सुनाई पड़ती है, तभी उस अनिर्वचनीय की वाणी और अरूप की रूप-माधुरी प्रत्यक्ष होने लगती है। चित्त की यही ग्रहण-शीलता उसकी पात्रता है। इस पात्रता के बिना अदृश्य का दर्शन दुर्लभ है।

फिर उस राजा का और साधु का क्या हुआ—कुछ पता नहीं। उससे प्रयोजन भी क्या है। कहानी और उपन्यास के सब पात्र काल्पनिक होते हैं, पर घटना-चक्र वास्तविक होता है। इतिहास के सब पात्र वास्तविक होते हैं, पर घटना-चक्र सदा विवादास्पद रहता है। कल्पना कभी नीरस इतिहास नहीं बन सकती और इतिहास कभी

कल्पना के पंखों पर चढ़ कर गगन-विहारी नहीं बन सकता । पर काव्य और साहित्य में ये दोनों जिस प्रकार एकाकार हो जाते हैं उससे मानव-जीवन के कूट-हलाहल में अमृत की सरस बूँदें मिला कर उसे जीने योग्य बना देती है ।

यही लीजिए न । लोकसभा के चुनावों में क्रांति का एक चक्र चला था । इसके बाद विधानसभा के चुनावों ने क्रांति का एक और चरण पूरा कर लिया । इस चरण के पूरा होने से यह भी स्पष्ट हो गया कि जो लोग विधानसभाओं के चुनावों की घोषणा को अलोक-तंत्रीय कह रहे थे, वे स्वयं लोक-मानस से कितनी दूर थे । और इन चुनावों ने उन नजूमी मदारियों की भविष्यवाणी भी गलत सिद्ध कर दी जो यह कहते थे कि जनता ने आपातकाल में ज्यादती करने वाली चौकड़ी को ही अस्वीकार किया है । कांग्रेस के सिद्धांतों को नहीं । सिद्धान्त थे ही कहाँ, वहाँ तो सिर्फ व्यक्ति ही व्यक्ति थे ।

सिद्धान्त तो सदा निर्जीव होते हैं, उनमें जीवन तभी आता है जब उन्हें सँभालने वाले हाथों में जीवन होता है । जनता हाथों को पहचानती है, क्योंकि वे मूर्त होते हैं । अमृत सिद्धान्त केवल बुद्धि-विलास के सूचक हैं ।

क्रान्ति का यह नया चरण पूरा करके जनता ने केन्द्र में और राज्यों में 'जनता' को प्रतिष्ठित किया है । शासकों को सतत जागरूक रखने के लिए जनता के पास वही तीन पाठ हैं जो कहानी के इस साधु के पास थे । जनता की तलवार अकस्मात् हमला करती है—न दिन देखती है, न रात, और जो राजा सावधान नहीं रहता वह तलवार के वार से आहत होता ही है । जो चूका, तो गया ।

यों यह केवल कहानी है, इतिहास नहीं । पर कहानी को इतिहास बनते भी देर नहीं लगती । और इतिहास इस प्रकार की कहानियों से भरा पड़ा है जब राजा और सम्राट् इन तलवारों के वारों से छिन्न-विच्छिन्न होकर चिर-निद्रा में खो गए ।

कहते हैं सिकन्दर की माता ने कब्रिस्तान में जाकर घरती माता

से अपने वेटे की कब्र के बारे में पूछा ।

धरती माता ने पूछा कौन सिकन्दर ?

सिकन्दर को जननी ने गर्व से छाती फुलाकर कहा—अरे ? तुम विश्वव्यापी महान् सिकन्दर को भी नहीं पहचानतीं ?

धरती माता ने शान्त भाव से कहा—‘ऐसे कितने सिकन्दर मेरी गोद में शांत होकर सोये पड़े हैं—मैं कहाँ तक याद रखूँ ।’



## उनके गले का हार तो तैयार हो गया

एक छोटी-सी कहानी से बात शुरू करें—

एक चतुर व्यक्ति ने शहर पहुँच कर सस्ती सी पगड़ी खरीदी । मुश्किल से ५-६ रु० की होगी । पर थी रंगीन और चमकदार । रंगीनी और चमक को देख कर अक्सर भ्रम हो ही जाता है । पगड़ी पहन कर वह राजा के दरबार में पहुँच गया । राजा की नजर भी उसकी पगड़ी पर पड़ी । पूछा—कितने में खरीदी है, बड़ी सुन्दर लग रही है । चतुर व्यक्ति इसी प्रश्न की प्रतीक्षा में था । तुरन्त बोला—हजूर ! इस पर पाँच हजार रु० खर्च किए हैं । राजा सुन कर स्तब्ध रह गया । तभी वजीर ने राजा के कान में कहा : आदमी धोखेबाज मालूम पड़ता है । ६-७ रु० की पगड़ी के दाम पाँच हजार रु० बता रहा है । जरूर इसकी नीयत में बेइमानी है ।

चतुर व्यक्ति समझ गया कि वजीर ने राजा के कान में क्या कहा होगा । खग ही जाने खग की भाषा । थोड़ा ठहर कर राजा से बोला—तो मैं जाऊँ । असल में बात यह है कि जिस आदमी से मैंने यह पगड़ी खरीदी थी उसका कहना था कि इस दुनिया में एक राजा ऐसा गुण-ग्राहक और पारखी है जो इस पगड़ी के पचास हजार रु० तक दे सकता है । मैं उसी राजा की खोज में निकला हूँ, पर लगता है कि मैं गलत जगह आ गया हूँ । यहाँ कोई इस पगड़ी का पारखी प्रतीत नहीं होता ।

राजा ने तुरन्त आदेश दिया—पगड़ी रख दो और पचास हजार रु० ले लो । चतुर व्यक्ति पगड़ी रख कर पचास हजार रु० लेकर वहाँ से चल दिया । दरवाजे पर ही उसे वजीर मिल गया । वजीर

उनके गले का हार तो तैयार हो गया :: ११३

ने उस चतुर व्यक्ति से कहा—तुमने तो इद ही कर दी। इतनी सस्ती चीज के इतने दाम लेकर तुमने राजा को एकदम लूट लिया। आखिर तुम्हारे इस हुनर का रहस्य क्या है। चतुर व्यक्ति ने बजीर के कान में धीरे से कहा—आपको पगड़ियों को कीमत मालूम होगी, मुझे आदमियों की कमज़ोरियाँ मालूम हैं। मैं उस खूंटी को जानता हूँ जिसे छू देने भर से आदमी घूमने लगता है।

वह खूंटी है अहंकार की। इस खूंटी से बंधने के बाद और सैकड़ों बंधन अपने आप जकड़ लेते हैं। पर यह खूंटी इतनी विचित्र है कि इसमें लटके आदमी को बाकी सारी दुनिया अपनी मुट्ठी में लगती है। अपना बन्धन उसे दीखता नहीं, शेष सबकी मुक्ति उसे सुहाती नहीं। धीरे-धीरे यह अहंकार इस सीमा तक पहुँच जाता है कि ‘हम च मा दीगरे नेस्त’ वाली स्थिति आ जाती है—‘एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म’ वाला अद्वैत भी इससे बढ़ कर क्या होगा !

दिवस जात नीहं लाग्हिं बारा। देखते-देखते दो साल बीत गए और फिर २६ जून आ गई। वही २६ जून जब देश में आपात स्थिति लागू हुई थी। भक्त लोग परमात्मा के बारे में श्रद्धाभिभूत होकर कहते हैं—

मूक होहिं वाचाल पंगु चड़े गिरिवर गहन ।

जाकी कृपा सुदयाल द्रवहु सकल कलिमल दहन ॥

पर अहंकार की खूंटी पर लटके व्यक्ति की कृपा से वाचाल श्री मूक हो सकते हैं और गिरिवर गहन को आनन-फानन लांघने वालों को पंगु होते भी देर नहीं लगती। सहात्मा गाँधी की प्रशस्ति में कहा जा सकता है कि उस ‘अर्ध नग्न फकीर’ (चर्चिल के शब्दों में) ने मिट्टी के पुतलों में जान पूँक कर उन्हें सोने और हीरे का आदमी बना दिया, और आपातकाल की प्रशस्ति में कहा जा सकता है कि उसने सोने और हीरे के आदमियों को भी मिट्टी के पुतलों में परिवर्तित कर दिया। कौन-सा चमत्कार बड़ा है, यह कहना कठिन है।

गाँधी के जमाने के साथ एक और समानता (!) भी दिखाई जा सकती है। उस समय भी एक ओर बारदोली और दूसरी ओर

चम्पारन आंदोलन के उत्तेजक केन्द्र बिन्दु बने थे । इस बार फिर वही गुजरात और बिहार धुरी बने ।

इतिहास एक और भी बात कहता है—कुरुक्षेत्र और पाटलिपुत्र अतीत में भारत के भाग्यनिर्णयक की भूमिका निभाते रहे हैं । पानी-पत से लेकर पटना तक हिन्दी भाषी जनता की जो धुरी है, देश के किसी भी आंदोलन की सफलता के लिए उस धुरी का जानना आवश्यक है । जब पानीपत-पटना धुरी के साथ प्लासी भी जुड़ जाए और जुड़ जाए उसके साथ गुजरात और महाराष्ट्र का जागरूक जनमानस, तब इतिहास के पट-परिवर्तन की पूरी भूमिका तैयार हो जाती है । वर्तमान पट-परिवर्तन में इतिहास की इस चिरन्तन भूमिका की उपेक्षा करने वाला न्याय नहीं कर पाएगा ।

आपातकाल की इस पुण्यतिथि पर क्या, क्यों, कैसे—इस सबका विश्लेषण भी अजीब-सा लगता है । फिर भी विश्लेषण करने वाले विश्लेषण करेंगे ही । न जाने कितनी घटनाएँ इस समय दिमाग में तैर रही हैं । बहुत-सी घटनाएँ अभी प्रकाश में आने की प्रतीक्षा में हैं । पर एक दृश्य तो हृदय के किसी कोने में ऐसा जमकर बैठ गया है कि निकाले नहीं निकलता ।

लखनऊ में, ५१ वर्षीय चन्द्रशेखर तिवारी नामक एक रेलवे कर्मचारी को कमर में रस्सा बाँध कर और हाथों में हथकड़ियाँ डालकर जेल भेजा गया । ६ वर्ष का नन्हा बबलू अपनी माँ के साथ पिता से जेल में मिलने गया । उसने सिपाहियों से कहा—मेरे पिता को छोड़ दो, उनके स्थान पर मुझे जेल में डाल दो, उनके बिना हम सब भाईं-बहन भूखे मर जाएँगे ।

जब सिपाहियों ने उसकी बात पर ध्यान नहीं दिया, तब उसने जेल के अधिकारी से कहा—मेरे पिता को छोड़ दो, मुझे भले ही गोली मार दो ।

जेल के अधिकारियों ने उसे झिड़क दिया । घर आकर बबलू ने अलीगंज स्थित हनुमान जी की कई मील की परिक्रमा पेट के बल लेट-लेट कर पूरी करने का निश्चय किया । चड्ढी पहन कर नंगे बदन

उनके गले का हार तो तैयार हो गया :: ११५

उसने लेट कर परिक्रमा शुरू की । लोग कहते—अरे ! तुम इतने छोटे हो, फिर यह परिक्रमा क्यों कर रहे हो ? बच्चा कहता—इससे मेरे पिता जेल से छूट जाएँगे । लोगों ने उसे बहुत मनाया । बबलू नहीं माना ।

डामर की लड़क पर नंगे बदन धूप में लेट कर परिक्रमा करते एक मील तक जाने के बाद बबलू को बुखार हो गया । माँ बड़ी मुश्किल से उसे लौटा कर लाई । घर आकर बबलू ने खाट पकड़ ली । तेज बुखार की बेहोशी में भी बबलू बड़-बड़ाता रहा—‘मेरे बापू को छोड़ दो, मेरे बापू को छोड़ दो’ बुखार बढ़ता गया । तीसरे दिन उसने आँखे फेर दीं—तो अस्पताल में दाखिल कराया गया । चौथे दिन उसने सदा के लिए आँखे फेर लीं । रिश्तेदारों की दौड़-धूप से बबलू के पिता को एक घंटे के लिए पैरोल पर छोड़ा गया । घर पर मुश्किल से २०-२५ मिनट ही रहे होंगे कि पुलिस वालों ने कहा—‘चलिए-चलिए, समय समाप्त है गया—यह सब तो चलता ही रहता है ।’

चन्द्रशेखर तिवारी ने कहा—‘भाई ! आया हूँ तो बेटे की अर्थी के साथ जाकर अंतिम किया तो कर आऊँ ।’ पुलिस वालों ने कहा—‘हम कुछ नहीं जानते । पैरोल का समय समाप्त हो गया है ।’

उधर बबलू की अर्थी श्मशान की ओर चली और इधर आँखों में गंगा-जमना का नीर भरे चन्द्रशेखर तिवारी को लेकर पुलिस की जीप उससे उल्टी दिशा में जेल की ओर चली ।

जिस अहंकार की खूँटी से आपातकाल का जन्म हुआ था क्या उसके गर्भ में यही हृदयहीनता छिपी थी ? तानाशाही के बुलडोजर ने गरीबों को भुग्गी-झोपड़ियों को ही धाराशायी नहीं किया, मानवता को भी रसातल में पहुँचा दिया ।

कितने गुलों का खून हुआ, इससे क्या गरज ।

उनके गले का हार तो तैयार हो गया ॥

## केहि न राजमद दीन्ह कलंकू

दिल्ली के अन्तिम बादशाह थे वहादुर शाह जफर। जब उन्होंने गद्दी संभाली तब मुगल सल्तनत का सौभाग्य-सूर्य अस्तायमान था। फिर भी मुगल साम्राज्य का दिग्न्त तक विस्तार करने वाले अकवर और औरंग-जेब के उत्तराधिकारी होने के नाते वे भारत के शहंशाह थे। वहादुर शाह को शायरों का शौक था। 'जफर' उनका तखल्लुस था। शहंशाह का एक शेर है—

जफर आदमी उसको न जानियेगा  
चाहे कितना हो साहवे- फहमो-जका ।  
जिसे ऐश में यादे-खुदा न रहा  
जिसे तैश में खौफे-खुदा न रहा ॥

शायद इस शेर में जफर ने अपने जीवन के अनुभवों का निचोड़ भर दिया है। 'आदमी' की जितनी परिभाषाएं की गई हैं उनमें शायद यह बहुत सन्तुलित परिभाषा है। पर सच यह है कि जिसे ऐश में खुदा की याद रहे और तैश में खुदा का खौफ रहे, वैसा आदमी मिलना आसान नहीं है। आम तौर पर तो 'प्रभुता पाई काहि मद नाहीं' वाली बात ही लागू होती है।

आजकल सब लोग गरीबी के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं। पुरानी सरकार ने गरीबी हटाने का सबसे अच्छा नुस्खा यह समझा कि गरीबों को ही हटा दिया जाए। इसलिए वह उन्हीं के पीछे हाथ धोकर पड़ गई। न गरीब रहें, न गरीबी रहे। पर गोस्वामी तुलसीदास उल्टी बात कह गए—

तू है गरीब नवाज  
मैं गही न गरीबी ।

इतना ही क्यों, अपने आराध्य देव को सम्बोधित करते हुए गोस्वामी  
जी यह भी कह गए—

मो सम दीन न दीन हित  
तुम्ह समान रघुबीर ।  
अस विचारि रघुबंस मनि  
हरहु विषम भवभीर ॥

यह गरीबी कौन सी है जिसकी कामना सन्त जन और भक्त शिरो-  
मणि करते हैं । असल में गरीबी केवल धन-हीनता नहीं है । गरीबी के  
भी कई रूप हैं । एक गरीबी वह है जो धन से कदाचित् किसी हद तक  
दूर हो सकती है, पर एक गरीबी वह है जो धनवानों के पास भी रहती  
है ।

एक बार एक साधु किसी राजा का अतिथि बन कर उसके प्रासाद  
में रहा । राजा ने राजसी ठाठबाट के साथ साधु का आतिथ्य किया ।  
इतने साज-सरंजाम को देख कर साधु मौज में आ गया और राजा से  
पूछने लगा—‘क्या आपको भी राजा होने का भ्रम है ?’ राजा चकित  
होकर बोला—‘भ्रम ? भ्रम कैसा ? मैं तो राजा हूँ ।’ जितनी दृढ़ता से  
राजा ने यह बात कही उतनी ही जोर से साधु मन ही मन हंसा ।

इसी प्रकार कितने ही पंडितों को अपने ज्ञानी होने का भ्रम होता  
है और संन्यासियों को अपने त्यागी होने का । पर क्या आदमी धन से  
ही धनी होता है ? कितने ही धनियों की गरीबी इतनी जबर्दस्त होती  
है कि उनकी दशा पर गरीब से गरीब व्यक्ति को भी दया आ जाए ।  
किसी अन्य की दृष्टि में ही क्यों, क्या अपनी ही नजर में दयनीयता की  
पराकाष्ठा तक पहुँचे सम्पन्न व्यक्ति आपने नहीं देखे ? तो शान्ति की  
खोज में भटकने वाले और उसके लिए अपनी सारी सम्पत्ति लुटा डालने  
को आतुर ये लोग कौन हैं ? कौन से सांसारिक पदार्थ का अभाव उनको  
खेल रहा है ? उनकी इच्छा मात्र का संकेत पाते ही सैकड़ों अनुचर उस  
पदार्थ को जुटाने को तत्पर हैं, पर गरीबी की पीड़ा है कि मन से जाने

११८ :: ओ ! मेरे राजहंस

का नाम नहीं लेती ।

फिर क्या ऐसे गरीब भी आपने नहीं देखे जिनके पास अपना कहने को कुछ नहीं, सर्वथा अकिञ्चन, किन्तु मस्ती ऐसी कि देखने वाले तरसें और राजा-महाराजा इस मस्ती का कण-भर पाने के लिए उनके आगे पीछे चक्कर लगाएं ? ।

ऐश में खुदा की याद रखने वाला और तैश में खुदा का खौफ खाने वाला व्यक्ति वही हो सकता है जिसे धन और सत्ता मदान्ध नहीं बनाते और इनका अभाव जिनका मानसिक सन्तुलन नहीं छीन पाता ।

यही है असली आदमी—पुरुष—पुरुष ही नहीं, पुरुषोत्तम । इसी पुरुषोत्तम श्रीराम को महाराज दशरथ ने अपना उत्तराधिकारी बनाने की घोषणा की । अयोध्या में राजतिलक की तैयारियाँ होने लगीं । बीच में ही आ कूदी मन्थरा । निश्चय हुआ कि राजतिलक के बजाय राम को चौदह वर्ष का बनवास दिया जाए । कहाँ राजतिलक ! कहाँ आजीवन कारावास ! (आजीवन कारावास भी १४ वर्ष का ही होता है न !) कितनी विपरीत परिस्थितियाँ ! महर्षि वाल्मीकि ने इस क्षण का चित्रण करते हुए लिखा है—

आहुतस्याभिषेकाय उत्सृष्टस्य बनाय च ।

न भया लक्षितस्तस्य स्वल्पोऽप्याकारं विभ्रमः ॥

—जब राम को राज्याभिषेक के लिए बुलाया गया और जब उनको बनवास के लिए भेजा गया—तब—इन दोनों अवसरों पर राम के चेहरे पर मैंने एक भी शिकन नहीं देखी । सुख और दुःख की चर-मावस्था में भी मानसिक सन्तुलन न खोना ही आदमियत है, शायद इसी का आदर्श उपस्थित करने के लिए मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम का अवतार हुआ था । नहीं तो कनक से सौ गुनी मादकता वाला कनक पाकर और सुजाखों को भी धृतराष्ट्र की तरह अन्धा बना डालने वाली राजसत्ता पाकर मन का सन्तुलन खो देने वालों की कमी नहीं है । शायद गाँधी जी अपने आश्रम में प्रार्थना के समय स्थितप्रज्ञ के लक्षण बताने वाले गीता के श्लोकों का इसीलिए पाठ करते थे कि कहीं उनके सहवासियों का मानसिक सन्तुलन प्रतिकूल परिस्थितियाँ

पाकर विश्रृंखलित न हो जाए ।

दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगत स्पृहः ॥

—जो दुःख आने पर उद्विग्न नहीं होता और सुख आने पर फूल कर कुप्पा नहीं हो जाता । वही ऐश में खुदा की याद रखने और तैश में खुदा का खौफ खाने वाली बात है । उसी का नाम स्थित प्रज्ञ है । नहीं तो—

सहस बाहु सुरनाथ त्रिसंकू ।

केहि न राजमद दीन्ह कलंकू ॥

सत्तासीन होकर जिसने इस स्थितप्रज्ञता का अभ्यास नहीं किया, वह कलंक से कैसे बचेगा—जब सहसबाहु, देवताओं के राजा इन्द्र और त्रिशंकु ही कलंक से नहीं बच सके । यदि जनता की गरीबी हटाने के नाम पर मंत्रीगण अपनी ही गरीबी हटाने में लग जाएँ तो जनता के सामने वे गलत आदर्श उपस्थित करेंगे ।

अपने बुद्धिबल से नन्द के साम्राज्य को नष्ट कर चन्द्रगुप्त मौर्य को सम्राट् पद पर अभिषिक्त कराने वाले और तत्कालीन राजनीति को अपने इशारों पर नचाने वाले महामात्य चाणक्य के वैभव का वर्णन करते हुए महाकवि विशाखदत्त ने ‘मुद्राराक्षस’ में उनके निवास स्थान का एक शब्दचित्र खींचा है—

उपलशकलमेतत् भेदकं गोमयाना

वटुभिरु पहृतानां वर्हिषां स्ताम एषः ।

शरणमपि समिदिभः शुष्यमाणाभिराभिः

विनमित पटलान्तं दृश्यते जीर्णकुड्यम् ॥

—गोबर के सूखे उपलों को तोड़ने के लिए यह पत्थर का टुकड़ा पड़ा है । एक ओर यह शिष्यों द्वारा जंगल से लाई गई समिधाओं का ढेर पड़ा है । कुछ समिधाएँ छत पर सूख रही हैं और उनके बोझ से इस जीर्णशीर्ण कुटिया का फूस का छप्पर भुक गया है ।

वाह ! चन्द्रगुप्त के प्रधानमंत्री के क्या ठाठ है ! यह था उस युग का १० डाउर्निंग स्ट्रीट, जिस पर संसार भर के प्रधानमंत्री-निवास ईर्ष्या करेंगे ।

पर क्या भूग्णी-झोंपड़ी वाले भी इस कुटिया से ईर्ष्या करेंगे ? □

## मन्दिर पुराना पड़ गया है !

गाँव में एक पुराना मन्दिर था । इतना पुराना कि उसमें भक्तों के लिए प्रवेश भी खतरे से खाली नहीं रहा । दीवारें इतनी जीर्ण-शीर्ण हो गई थीं कि कभी तेज आँधी चलती या बादल गरजते और विजली कड़कती तो वे काँप जातीं । धीरे-धीरे लोगों ने उसमें जाना छोड़ दिया । इतना ही नहीं, पड़ोस में वसना भी छोड़ दिया—इस डर से कि कहाँ किसी दिन इसकी ये दीवारें गिर पड़ी तो जान लेकर रहेंगी ।

मन्दिर के पुजारी बड़े चिन्तित हुए । जब भक्तगण ही नहीं आते तो पुजारियों के योगक्षेम की चिन्ता कौन करे ? अन्त में पुजारियों ने यह सोचकर एक कमेटी बनाई कि इस पुराने मन्दिर के स्थान पर एक सर्वथा नवीन मन्दिर बनाया जाए और उसके लिए जनता से धनादि का सहयोग लिया जाए ।

उस कमेटी ने खूब विचार-विनिमय के पश्चात सर्वसम्मति से चार निश्चय किये—पहला तो यह कि इस मन्दिर को गिरा दिया जाए । दूसरा यह कि नया मन्दिर बनाया जाए, लेकिन ठीक उसी स्थान पर जहाँ पुराना मन्दिर बना है और ठीक वैसा ही जैसा पुराना मन्दिर है । तीसरा प्रस्ताव यह पास किया कि नया मन्दिर बनाने में पुराने मन्दिर के दरवाजे, ईंट आदि सब सामग्री ज्यों की त्यों इस्तेमाल की जाए । और चौथा प्रस्ताव यह पास किया किया कि जब तक नया मन्दिर न बन जाए, तब तक इस पुराने मन्दिर को न गिराया जाए ।

वह पुराना मन्दिर आज भी ज्यों का त्यों खड़ा है । पता नहीं, कब तक इसी प्रकार खड़ा रहेगा ।

यह मन्दिर और कोई नहीं हमारी शिक्षा-प्रणाली का मन्दिर है ।

अंग्रेजों ने जब भौतिक दृष्टि से भारत को अपने शिकंजे में कस लिया, तब मानसिक दृष्टि से उसे पराधीन बनाने के लिए यह शिक्षा-प्रणाली जारी की। स्वातंत्र्य-संघर्ष के दिनों में महात्मा गांधी ने इस शिक्षा-प्रणाली की निरर्थकता को पहचाना और युवा पीढ़ी का उसके बहिष्कार के लिए आह्वान किया। स्वर्णीय श्री लाल बहादुर शास्त्री से लेकर हमारे राष्ट्रपति नीलम संजीव रेही तक अनेक राष्ट्रीय नेता उसी आह्वान की पैदावार हैं। महात्मा गांधी ने अपने आह्वान को रचनात्मक रूप देने के लिए राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना की और शिक्षा-सम्बन्धी अपनी कल्पना को साकार करने के लिए बुनियादी शिक्षा के नाम से ऐसी प्रणाली प्रारंभ की जिसमें पुस्तकीय आडम्बर के बजाय बचपन से ही श्रम की प्रतिष्ठा की व्यवस्था थी। पर महात्मा गांधी के मंच से हट जाने के पश्चात वे सब राष्ट्रीय विद्यापीठ चेतना-शून्य हो गए और बुनियादी शिक्षा का कोमल पौधा तो सूख कर ऐसा मुरझा गया कि आज कहीं उसके दर्शन करने हों तो किसी अजायबघर की तलाश करनी पड़ेगी।

हमारे राष्ट्रचेता मनीषियों ने भारत में विद्यमान प्रचलित शिक्षा-प्रणाली के दोषों को हृदयंगम न किया हो, ऐसी बात नहीं। प्रत्युत कहना चाहिए कि स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात प्रायः सभी प्रधान मंत्रियों, राष्ट्रपतियों और शिक्षाशास्त्रियों ने इस शिक्षा-प्रणाली के परिवर्तन पर बल दिया। अनेक आयोग बैठे। उन्होंने भी यही बात दुहराई। श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने प्रधानमंत्री के पद पर आसीन होने के कुछ काल पश्चात् ही बड़ी ईमानदारी से कहा था कि आजादी प्राप्त करने के बाद हमसे दो बड़ी भूलें हो गईं—पहली तो यह कि हमने अंग्रेजों की नौकरशाही को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया, और दूसरी यह कि हमने अंग्रेजों द्वारा जारी की गई शिक्षा-प्रणाली को ज्यों का त्यों स्वीकार कर लिया। जब हमारे नए प्रधानमंत्री, जो मनसावाचाकर्मणा गांधीवादी सिद्धांतों में रचे-पचे और ढले हैं, श्री मोरारजी देसाई भी शिक्षा-प्रणाली में आमूलचूल परिवर्तन की बातकर रहे हैं। पर मैकाले निर्मित यह प्राचीन मन्दिर अभी तक ज्यों का त्यों खड़ा है। न जाने

इसमें ऐसा क्या जादू है कि इतने विरोध के बावजूद अभी तक इस मन्दिर की एक भी इंट नहीं हिली ।

मैकाले की इससे बढ़कर सफलता और क्या होगी कि उसने इस शिक्षा-प्रणाली में दीक्षित आधुनिक भारत की युवा और पुरानी दोनों पीढ़ियों से इस हृद तक उनका अभिक्रम और पराक्रम छीन लिया कि इस प्रणाली का विरोध सब करते हैं, पर मन्दिर की इंट सिसकाने की हिम्मत किसी में नहीं ।

युवा पीढ़ी का जिक्र आते ही याद आता है—एकलव्य । वही एकलव्य—जो आभिजात्य से वंचित था, दरिद्र था, शोषित था । पर उसकी श्रद्धा-भक्ति में कभी नहीं थी । मन ही मन गुरु का वरण करके एकान्त-निष्ठा से साधना की और धनुर्विद्या में दक्षता प्राप्त कर ली । पर गुरु द्वोणाचार्य को लमा कि यदि एकलव्य इस विद्या में इतना निष्ठात हो गया तो मेरे प्रिय शिष्य अर्जुन को जो राजकुमार है, विशिष्ट वर्ग का प्रतिनिधि है, कौन पूछेगा । और गुरु दक्षिणा में द्वोणाचार्य ने एकलव्य का अङ्गूठा माँग लिया ताकि सर्वहारा वर्ग का यह प्रतिनिधि किसी भी तरह सामन्तों के विशेषाधिकार का अपहरण न कर सके । गुरु लोग तो इस प्रकार न जाने कव से गरीब शिष्यों के अङ्गूठे कटवाते आए हैं । एकलव्य भोला-भाला और सीधा-साधा था । उसने चुपचाप अङ्गूठा दे दिया । पर आज के ये एकलव्य ! ये अङ्गूठा देने को तैयार नहीं होंगे । इतना ही क्यों, अगर गुरु ने ज्यादा गुरुआई जताई तो ये अपने गुरु का अङ्गूठा काटने में भी नहीं हिचकेंगे ! ऐसे क्रांतिकारी हैं हमारे ये नए एकलव्य ! गुरुओं के अङ्गूठे काट सकते हैं, पर शिक्षा-प्रणाली में परिवर्तन के लिए अङ्गूली नहीं हिला सकते । ये नारों में व्यवस्था का विरोध करते हैं, पर स्वयं उसी व्यवस्था का अंग बनने को आतुर हैं जो निहित स्वार्थों की देन है । निहित स्वार्थों का विरोध केवल इसलिए कि एक दिन स्वयं इस विशिष्ट वर्ग में शामिल होकर अभावग्रस्तों के शोषण में सहायक हो सकें । कैसी विचित्र विड-म्बना है ! कौन कैरियर को दाँव पर लगाए ।

राष्ट्रपति के चुनाव के लिए कितना हँगामा देश भर में मचा ।

पर क्या राष्ट्र के जीवन में शिक्षक का महत्व कम है ? कोई शिक्षक राष्ट्रपति बन जाए, इसे शिक्षकों के लिए गौरव की बात समझा जाता है। पर इसमें शिक्षक का नहीं, राष्ट्रपति का ही गौरव है। शिक्षकों का गौरव तो तब हो जब कोई राष्ट्रपति शिक्षक बनने को लालायित हो। लोकमान्य तिलक से किसी ने पूछा था—‘अभी तो स्वराज्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है’, इस मंत्र की दीक्षा लोगों को देते हो, भारत को यदि सचमुच ही स्वराज्य मिल जाए तो तुम क्या करोगे ? लोकमान्य ने तुरन्त उत्तर दिया था—‘तब मैं नेतागिरी छोड़कर अध्ययन करूँगा। मैं देश के वच्चों को गणित पढ़ाना चाहूँगा।’ ईमानदारी से किया गया छोटे से छोटा काम भी ईश्वर की पूजा है। जो शिक्षा श्रम से जी चुराना और किसी काम को छोटा बताना सिखाती है, उसे सच्ची शिक्षा कैसे कहा जाए ?

अब्राहम लिंकन अमरीका के राष्ट्रपति बनने के बाद जब पहली बार सीनेट में बोलने खड़े हुए तब एक सदस्य ने खड़े होकर कहा—‘महाशय ! यह मत भूल जाना कि आप चमार की सन्तान हैं।’ संसद में कुछ लोगों ने खुश होकर तालियाँ बजाईं कि ठीक वक्त पर याद दिला दिया। लिंकन ने खड़े होकर निविकार भाव से कहा—‘मेरे पिता की याद दिलाकर आपने बहुत अच्छा किया। जहाँ तक मुझे याद है, शायद आपके पिता भी मेरे पिता से ही जूते बनवाते थे, पर उन्होंने कभी कोई शिकायत नहीं की। क्या आपको उनके बनाए जूतों में कोई शिकायत मिली है—नहीं तो आपको मेरे पिता की याद कैसे आ गई। मेरे पिता कुशल कारीगर थे। वे जितने अच्छे चमार थे, उतना अच्छा राष्ट्रपति मैं बन सकूँगा—मुझे इसमें सन्देह है।



## जिन्दगी किताब से बंधी नहीं

जापान के एक गाँव में एक ही सम्प्रदाय के दो मन्दिर थे। दोनों में पुश्टैनी वैमनस्य था। अनेक पीढ़ियों के लोग मर चुके थे, पर वे अपना वैमनस्य विरासत में दे जाते थे। पुजारी बदलते जाते थे, पर उनका वैमनस्य बदस्तूर कायम रहता था। दोनों पुजारियों के पास सेवा-ठहल के लिए दो लड़के थे। वे दोनों लड़के कभी रास्ते में मिल जाते तो आपस में बात भी कर लेते। पर उन दोनों के संरक्षक पुजारियों ने उन दोनों लड़कों को आपस में बात करने से मना कर रखा था।

एक दिन एक मन्दिर के पुजारी ने अपने लड़के को दूसरे मन्दिर के लड़के से बात करते देख लिया। पुजारी ने लड़के को डॉटा—मैंने उससे बात करने को मना कर रखा था, तुमने बात क्यों की? लड़के ने कहा—मैं खुद आपसे पूछने वाला था कि अब क्या किया जाए, क्योंकि उस लड़के ने एक ऐसी बात कह दी जिसका उत्तर मुझे नहीं सूझा। मैंने पूछा था—तुम कहाँ जा रहे हो? उस मन्दिर के लड़के ने कहा—जहाँ पाँव ले जाएँ।

गुरु को यह बात अख्खरी कि उस मन्दिर के लड़के से इस मन्दिर का लड़का पराजित हो जाए। यह तो इस मन्दिर की तीहीन है। उसने अपने बाले लड़के को समझाया कि कल फिर उस लड़के से वही प्रश्न करना—कहाँ जा रहे हो? अगर वह कहे कि जहाँ मेरे पाँव ले जाएँ, तो तुम उससे कहना कि मान लो, तुम्हारे पाँव न होते, तो तुम कहाँ जाते? इस प्रश्न का उत्तर वह नहीं दे सकेगा।

दूसरे दिन जब चौराहे पर उस मन्दिर का लड़का इस मन्दिर के

लड़के से मिला तो इसने पूछा—कहाँ जा रहे हो ? पर वह लड़का तो चण्ट निकला । आज उसने यह उत्तर नहीं दिया—जहाँ पाँव ले जाएँ । आज उसने कहा—जहाँ हवाएँ ले जाएँ । यह लड़का जो बंधा हुआ उत्तर सीख-पढ़ कर गया था, वह तो अब बेकार हो गया । इस लड़के को उस लड़के की बेईमानी पर बड़ा गुस्सा आया और लौटकर उसने गुरुजी को बताया कि मैं आज भी हार गया हूँ ।

मन्दिर के पुजारी ने कहा कि उस मन्दिर के पुजारी हजारों सालों से बेईमानी करते आ रहे हैं, इसलिए यह लड़का भी ईमानदार कैसे हो सकता है । जरा-जरा-सी बात में बदल जाते हैं लोग । लेकिन तुम घबराओ मत । कल तुम उससे फिर वही सबाल पूछना और जब वह कहे कि जहाँ हवाएँ ले जाएँ, तो तुम उससे कहना कि अगर हवाएँ बन्द हो जाएँ तो कहीं जाओगे कि नहीं ।

यह लड़का फिर चौराहे पर जाकर खड़ा हो गया, अपने सीखे हुए उत्तर की अमोघता से आश्वस्त । उस मन्दिर का लड़का आया । इस लड़के ने पूछा—कहाँ जा रहे हो ? पर वह लड़का तो सचमुच बड़ा बेईमान निकला । आज उसने हवाओं वाला उत्तर नहीं दिया । आज उसने सीधी बात कह दी—दूध लेने जा रहा हूँ । इस मन्दिर वाले लड़के के तरकस में रखा हुआ वह हवाओं वाला अमोघ तीर काम ही नहीं आया ।

बहुत बार ऐसा ही होता है । जब गाँठ की अक्ल नहीं होती तो उधार लिये हुए उत्तर वक्त पर काम नहीं आते । जो विद्यार्थी घोटने की विद्या में माहिर होते हैं, वे नियत प्रश्नों के नियत उत्तर घोटकर परीक्षा-भवन में महारथी की मुद्रा में प्रवेश करते हैं, पर जब प्रश्न-पत्र में उन्हें वे प्रश्न नहीं मिलते जिनके उत्तर उन्हें कण्ठस्थ हैं, तब उन्हें संसार में सबसे अधिक बेईमान वह परीक्षक ही लगता है जो इन बेचारों का 'कैरियर' नष्ट करने पर तुला हुआ है । पर जिन्दगी किताबों से बहुत आगे बढ़ गई है । वह बंधे-बंधाए उत्तरों से नहीं चलती । रोज प्रश्नों के रूप बदलते रहते हैं ।

- जहाँ तक बेईमानी का प्रश्न है—इसकी व्याख्या भी विचित्र है ।

एक व्यापारी की नाव समुद्री तूफान में फैस गई। उसने प्रभु से प्रार्थना की कि यदि मेरी नाव किसी तरह इस संकट से सही-सलामत पार हो जाए तो मैं अपनी आलीशान कोठी बेचकर इसका सब पैसा गरीबों में बाँट दूँगा। कोठी उसकी किसी महल से कम नहीं थी। कर्म-से-कर्म पाँच लाख तो उसकी नीलामी से बड़ी आसानी से मिल सकते थे। ईश-कृपा से वह व्यापारी नाव समेत सकुशल अपने घर पहुँच गया। अब उसने घोषित संकल्प को पूरा करने का निश्चय किया। पर स्वभाव से था वह कंजूस। उसने अपने घर में एक छोटा-सा खूब-सूरत कुत्ता पाल लिया। और नीलामी की शर्त यह रखी कि इस मकान की वही खरीद सकेगा, जो उस कुत्ते को भी साथ ही खरीदेगा। कुत्ते की कीमत ? पाँच लाख रु०। और मकान की कीमत ? सिर्फ एक रुपया। लोग बड़े हैरान थे—कुत्ता पाँच लाख रु० का ? पर शर्त तो शर्त है। आखिर एक ग्राहक ने कुत्ता और मकान दोनों खरीद लिए। उस व्यापारी ने पाँच लाख रु० तो बैंक में डाल दिया और अपने घोषित संकल्प के अनुसार एक रुपया गरीबों में बाँट दिया—क्योंकि मकान की कीमत तो एक ही रुपया थी।

पर क्या यह व्यापारी ईमानदार है ? कौन-सा ऐसा कायदा-कानून है जो इस व्यापारी को बेईमान कह सके ? जिन्दगी यहाँ भी कानूनी किताबों से आगे बढ़ गई।

असल में जिन्दगी के काँटे देखने की हमें ऐसी आदत पड़ गई है कि जिन्दगी के फूल हमें दिखाई नहीं देते। कालिमा की अभ्यस्त आँखों को एक दम रोशनी में जाना पड़ जाए तो चौंध लगती है। रोज बेईमानी के नए-नए ढंग तालश करते-करते आदमी की ईमानदारी की परख जाती रही। इतना ही नहीं, बेईमान को ईमानदार भी बेईमान दिखाई देता है।

एक फकीर की कुटिया में अचानक एक रात चोर घुस आया। चोर ने सोचा भी नहीं था कि कुटिया का मालिक इस वक्त जागता होगा। उसे जागते देख चोर ने अपना छुरा निकाल लिया। फकीर दीपक की रोशनी में कुछ पढ़ रहा था। उसने आहट सुनकर नजर

उठाई तो देखा कि एक अंजनबी हाथ में छुरा लिये खड़ा है। फकीर ने कहा—‘मित्र ! छुरा रख दो, इसकी जरूरत नहीं है। बताओ कि इतनी रात गए तुम कैसे आए—कोई संकट तो नहीं है। इतनी बड़ी-बड़ी कोठियाँ छोड़कर तुम मेरी कुटिया पर आए हो, जरूर कोई खास बात है।’

ऐसी सहानुभूति पाकर चोर भी झूठ नहीं बोल सका। साफ कह दिया—चोरी करने आया हूँ। फकीर ने कहा—बड़े नादान हो। भलेमानस, एकाध दिन पहले इतला दी होती तो कुछ व्यवस्था करके रखता। अब मुझ गरीब की कुटिया में जो चन्द रु० रखे होंगे उनसे तुम्हारी जरूरत पता नहीं पूरी हो, या न हो। यह लो दस रुपए मेरे पास पड़े हैं—ये तुम ले लो। आगे से आओ, तो बता कर आना। और हाँ, अगर ठीक समझो तो इन दस रुपयों में से एक रुपया मेरे पास छोड़ जाओ—कल सबेरे मुझे इसकी जरूरत पड़ सकती है। यह एक रुपया मेरे ऊपर तुम्हारा उधार रहा, फिर कभी चुका दूँगा।

चोर घबराया हुआ था। उसे इस व्यवहार की आशा नहीं थी। वह रुपए लेकर भागने लगा। फकीर ने कहा—धन्यवाद तो देते जाओ।

चोर बाद में पकड़ा गया। उस पर और कई चोरियों के इलजाम थे। फकीर अदालत में हाजिर हुआ। चोर घबराया। यदि इस फकीर ने कह दिया कि मैं चोरी करने आया था, तो फिर मेरे विरुद्ध किसी और गवाही की जरूरत नहीं रहेगी—क्योंकि वह फकीर जानामाना था। मजिस्ट्रेट ने फकीर से पूछा—इस आदमी को पहचानते हो ? फकीर ने कहा—कैसे नहीं पहचानूँगा, यह तो मेरा मित्र है। और मित्र की पहचान सदा संकट में ही होती है। यह मेरी मित्रता पर भरोसा करके ही उस रात मेरी कुटिया पर आया था। मजिस्ट्रेट पूछा—इसने तुम्हारे यहाँ चोरी की थी ? फकीर ने कहा—कभी नहीं। मैंने इसे ना रुपए भेट किए थे, इसका एक रुपया अब भी मुझ पर उधार है।

कुछ महीने बाद वही चोर उस फकीर की कुटिया में फिर

## १२८ :: ओ ! मेरे राजहंस

आया । बोला—उस दिन तुमने मुझे अपना मित्र कहा था । मैंने इस बीच सोचकर देखा है, सचमुच ही तुम्हारे सिवाय मेरा और कोई मित्र नहीं है । तुम पहले आदमी हो जिसने मेरे मन में यह रुyaल पैदा किया कि मैं भी अच्छा आदमी बन सकता हूँ । अब मैं तुम्हार पास ही रहूँगा, और तुम्हें छोड़ कर कहीं नहीं जाऊँगा ।

जिन्दगी यहाँ भी किताब से आगे बढ़ गई ।



## ब्राह्मण की गौ—जो अवध्य है

प्रख्यात यूरोपीय दार्शनिक तत्त्ववेत्ता वाल्टेर ने कभी कहा था—‘भले ही मैं आपके विचारों से सहमत न होऊँ, पर अपने विचार व्यक्त करने के आपके ग्रधिकार की मैं सब तरह से रक्षा करूँगा।’ जब उसने यह बात कही थी तब कदापि विश्व में सामन्तवाद का वर्चस्व था और विचार-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता को बैधता प्राप्त नहीं थी। पर इस युग में, जब लोकतंत्र अपनी चरमादस्था को प्राप्त कर चुका है, अभिव्यक्ति-स्वतंत्र्य लोकतंत्र की एक ऐसी बुनियादी शर्त बन गई है कि उसके बिना लोकतंत्र की कल्पना ही नहीं की जा सकती। फिर जिस देश ने अनेक प्रकार के विपरीत दबावों और विषम परिस्थितियों के बावजूद लोक-तंत्रीय शासन प्रणाली को अपनाया हो और सारे ‘संसार में सबसे बड़े लोकतंत्र’ के नाम से ख्याति पा चुका हो, यदि उसी देश में अभिव्यक्ति-स्वतंत्र्य पर केवल अंकुश नहीं, बल्कि उसे निरकुश ढंग से सर्वथा समाप्त कर दिया जाए, तब उस देश में अन्दर ही अन्दर कैसा भयंकर ज्वाला-मुखी धधकेगा—इसकी कल्पना कौन कर सकता है?

कभी स्वर्गीय श्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने कहा था—‘मैं नियंत्रित पञ्च-समुदाय के बजाए पूर्णतः उन्मुक्त पञ्च-समुदाय पसंद करूँगा, भले ही समाचार-पत्रों द्वारा प्राप्त इस स्वतंत्रता के दुरुपयोग की आशंका भी विद्यमान क्यों न हो।’ पर जब शासक इन्द्र के सिंहासन पर बैठ कर यह समझने लगे कि ‘अहमिन्द्रो न पराजिये’— मैं इन्द्र हूँ, मुझे कोई पराजित नहीं कर सकता, तब वह उन स्थानों पर भी पदक्षेप करते नहीं करता, जहाँ देवता लोग जाते भय खाते हैं।

इस अभिव्यक्ति-स्वतंत्र्य का गला घोट देने का अवश्यम्भावी परिणाम

यह होता है कि शासक अपने चारों ओर ऐसे जी-हजूरों की मण्डली इकट्ठी कर लेता है जो शासक का रुख देखकर दिन को रात और रात को दिन कहने में भी नहीं हिचकते। जिस राजा के मंत्री, चिकित्सक और गुरुजन हर्ष में हर्ष मिलाने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं, उनके लिए नीतिकार कह गए हैं—

सचिव वैद गुरु तीन जो प्रिय बोलहिं भय आस ।

राज धर्म तन तीनि कर होइ वेगहि नास ॥

हमारे स्मृतिकारों ने ब्राह्मण को और गौ को अवध्य माना है। ब्राह्मण का अर्थ यदि बुद्धिजीवी हैं, तो गौ का अर्थ है वाणी। जिसने बुद्धिजीवियों की वाणी पर प्रतिबन्ध लगा दिया, उसने प्रकारान्तर से ब्राह्मण की गौ की हत्या कर दी। एक अवध्य की हत्या ही निषिद्ध है, फिर दो अवध्यों की हत्या तो डबल पाप की कोटि में आएंगी। आपात-काल के शायद सब अंकुश क्षम्य हो जाते, यदि समाचार-पत्रों पर सेंसर न लगता। क्योंकि तब समाचार-पत्र के रूप में ब्राह्मण की वाणी (गौ) सचिव, वैद्य और गुरु—तीनों का मनोबल बनाए रखती और ये तीनों ठकुर सुहाती करके राज्य, धर्म और तन तीनों के नाश का कारण न बनते।

भारत के प्राचीन राजा-महाराजा ब्राह्मण की गौ की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते थे। शायद उसी बात को आधुनिक सन्दर्भ में यों कहा जा सकता है कि प्रत्येक लोकतंत्रीय देश का संविधान अपने देश के निवासियों को विचार-अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता प्रदान करता है। भारत के संविधान में भी उसकी गारण्टी दी गई है। और सरकार है उस संविधान की संरक्षक। परन्तु जब बाढ़ ही बाग को खाने लगे, तो फूल कहाँ जाएँगे। तब तो ब्राह्मण के मुख से यही वाणी निकलेगी—

चमनवालों ने मिलकर  
लूट ली तर्जे-फुगाँ मेरी ।

हम ब्राह्मण की गौ को अवध्य कहकर बार-बार वाणी के स्वातंत्र्य की वकालत क्यों कर रहे हैं! इसलिए कि जंगल में जब चारों और अन्धकार ही अन्धकार होता है, हाथ को हाथ सुझाई नहीं देता, रास्ते

ब्रह्मण की गौ—जो अवध्य है :: १३१

की तो बात ही क्या, तब समझदार पथिक हाथ से ताली बजाते चलते हैं ताकि पीछे आने वाले अन्य पथिक उस आवाज को सुनकर रास्ता भटकने से बच जाएँ। ऐसे ही लोगों के कारण ‘पाणिघमा: पन्थानः’ यह संस्कृत का मुहावर बना है। सृष्टि के आदि में भी तो अन्धकार ही अन्धकार था। वेद में कहा है—

तम आसीत्तमसा गृहमग्रे  
अयुकेतं सलिलं सर्वमा इदंम ।

और तब ब्रह्मा की वाणी से ही सृष्टि का यह आदिम अन्धकार दूर हुआ था। वाइविल ने यदि सृष्टि के आदि में ‘शब्द और केवल शब्द’ की उपस्थिति स्वीकार की, तो वह आदि शब्द ब्रह्मा की वाणी ही है। काव्यशास्त्र वालों ने इसी ब्रह्मवाणी की दात को और स्पष्ट करते हुए कहा—

इदमन्धन्तम् सर्वं जायते भुवनत्रयम् ।  
यदि शब्दाह्यं ज्योति राससारं न विद्यते ॥

—ये तीनों लोक धोर अन्धकार से आच्छन्न होते यदि संसार में शब्द नामक ज्योति न होती। हाँ, शब्द ज्योति का काम करते हैं। शायद इसलिए वाणी के उपासक बुद्धिजीवी मानव को भगवंती श्रुति ने आदेश दिया है—

जोतिष्मतः पथो रक्ष ।

—ज्योति से युक्त पथों की रक्षा करो। पर जब इस बुद्धिजीवी की वाणी पर अंकुश लगा दिया जाए तो वह ज्योति से युक्त पथों की रक्षा कैसे करेगा?

एक बार एक शिक्षामंत्री ने, जो संसदसदस्य भी थे, भारतीय संसद में एक मनोरंजक चुटकुला सुनाया था: रूस के सीमान्त पर दो कुत्तों की भेट हुई। कहावत तो है कि एक प्रदेश का कुत्ता दूसरे प्रदेश के कुत्ते को बर्दाशत नहीं करता, पर उन दोनों कुत्तों में न जाने स्वजाति-प्रेम उमड़ा कि वे दोनों एक दूसरे का समाचार जानने को उत्सुक हो उठे। दोनों ने परस्पर कुशल-क्षेम पूछा। फिर रूस से भिन्न प्रदेश का निवासी कुत्ता रूसी कुत्ते से बोला—तुम खूब हष्ट-पुष्ट दीखते हो, पर

तुम्हारे चेहरे पर कुछ उदासी की रेखाएँ क्यों हैं ? रुसी कुत्ते ने दूसरे कुत्ते के कान के पास अपना मुँह लाकर कहा—मेरे देश में खाने-पीने की कोई कमी नहीं है, पर वहाँ एक ही कष्ट है और वह यह कि मेरे देश में भौंकने की आजादी नहीं है ।

लगता है कि रोटी से पेटभर जाने पर भी यदि वाणी की स्वतंत्रता छीन ली जाए, तो मनुष्य क्या, पशु को भी वह स्वीकार नहीं ।

एक बार अन्धकार ने भगवान से शिकायत की कि सूरज मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ा है । हालांकि हमारा कोई झगड़ा नहीं है, पर वह सूबह से साँझ तक मेरे पीछे पड़ा रहता है । मैं जहाँ जाऊँ, वहाँ से मुझे खदेड़ देता है । आप उसे समझाइए । भगवान ने सूरज को बुलाकर पूछा —अंधेरे ने तुम्हारा क्या बिगड़ा है; तुम उसके पीछे क्यों पड़े हो ? आजकल संसार में सह-अस्तित्व का युग है, तुम दोनों साथ-साथ क्यों नहीं रह सकते ?

सूरज भौंचक्का रह गया । उसने कहा—मैं तो जानता ही नहीं कि अंधकार कौन है, मेरी तो उससे कभी भेट हुई ही नहीं । मैं उसके पीछे क्यों पड़ूँगा । आप कृपा कर उसे मेरे सामने बुला दें, तो मैं उससे माफी माँग लूँ । शायद अज्ञानवश कभी कोई भूल हो गई हो ।

भगवान तभी से अन्धेरे को सूरज के सामने लाने की कोशिश में लगा है । पर अभी तक उसे सफलता नहीं मिली । कभी मिलेगी भी नहीं ।

अन्धकार को सूरज के सामने नहीं लाया जा सकता, क्योंकि अंधकार का अस्तित्व ही नहीं है । अन्धकार सिर्फ प्रकाश के अभाव का नाम है ।

ब्राह्मण की गौ भी अवध्य है—उसे नहीं मारा जा सकता । कोई तानाशाह उसे मारकर कितना ही नीचे क्यों न दफना दे, पर वह फिर जी उठेगी, फिर-फिर जी उठेगी ।



## बाण संभालो लक्ष्मण !

मंहगाई ! मंहगाई !! मंहगाई !!!

जनता पार्टी की सरकार को शासन संभाले इतने दिन हो गए । इस अवधि में की सरकार की उपलब्धि क्या है—इस संबंध में न केवल जनता ही चर्चा करती है, प्रत्युत सरकार और उसके विभिन्न घटक भी परस्पर एक दूसरे के मुख पर इसी सवाल को उभरता पाते हैं । उपलब्धि के नाम पर आपात-स्थिति की समाप्ति, वाणी और लेखनी की स्वतंत्रता तथा आपात स्थिति के दौरान की गई ज्यादतियों की जाँच के लिए कमीशनों की नियुक्ति जैसी बातों में अब दम नहीं रहा । जो बात जितनी सहजता से प्राप्त हो जाए, उसका उतना ही अवमूल्यन हो जाता है । नई सरकार ने उक्त काम इतनी तत्परता से कर दिए कि अब इन उपलब्धियों में जनता को कुछ भी आकस्मिक या अस्वाभाविक-सा नहीं लगता ।

ले-देकर इस समय एक ही स्वर मुखर है और वह है—मंहगाई के विरुद्ध आक्रोश । आपात-स्थिति के दौरान जिन लोगों ने पूर्ण आत्म-समर्पण के साथ 'मुद्दई सुस्त और गवाह चुस्त' का रोल अदा किया था, अब भय-मुक्ति के आङ्गूष्ठ के साथ उनका भय इस कदर हट गया है कि मंहगाई के विरुद्ध अभियान में भी वे सबसे आगे नजर आते हैं । शायद इस अभियान में ऐसे चेहरे भी पहचाने जा सकें जिनका स्वयं मंहगाई बढ़ाने में सक्रिय योगदान रहा हो ।

आखिर मंहगाई बढ़ क्यों रही है ? प्रधानमंत्री और जनतापार्टी के अध्यक्ष बार-बार व्यापारियों से अपील कर चुके हैं कि वे उपभोक्ता वस्तुओं की कीमतें चढ़ाने न दें । पर न व्यापारी सुनते हैं और न वस्तुएँ

सुनती हैं। खास तौर से दालों और तेलों के भाव आसमान छूने के के अभियान पर निकल पड़े हैं। व्यापारियों के प्रवक्ता कहते हैं कि इस वर्ष दालों और तिलहन का उत्पादन ही कम हुआ है, इसलिए इनके भाव चढ़ने से नहीं रोके जा सकते। विपक्षी कहते हैं कि सरकार व्यापारियों के साथ मिली हुई है और उसी की शह से व्यापारी जनता को लूट रहे हैं। अन्य लोग कहते हैं कि आपात स्थिति के दौरान दुकानदारों को वस्तुओं की मूल्य सूची टाँगने की जो अनिवार्यता थी, उसे समाप्त करने का परिणाम है यह। उद्योगपति कहते हैं कि हड़तालों और घेरावों का सिलसिला पुनः शुरू हो जाने से उत्पादन में निरन्तर ह्रास के कारण यह मंहगाई बढ़ रही है। अधिक वर्षों के कारण शक्तिसभ्बी सड़ गई, फसल मारी गई या यातायात अवरुद्ध हो गया—यह कारण भी ब्रताया जाता है। उपभोक्ता और खाद्य वस्तुओं के निर्यात से मंहगाई बढ़ी है—इस शिकायत पर सरकार ने उनका निर्यात रोक दिया, पर मंहगाई पर विशेष असर नहीं पड़ा। कुछ अर्थशास्त्रियों ने ईमानदारी से कहा कि विकासशील देश में मंहगाई का बढ़ना किसी हद तक आवश्यक है, इसलिए चिंता मंहगाई को रोकने के बजाय उत्पादन बढ़ाने की करनी चाहिए। कुछ विजजनों ने यह तर्क भी दिया कि पिछली सरकार ने घाटे की अर्थव्यवस्था को अपनाया, उससे मुद्रास्फीति बढ़ी और मुद्रास्फीति का कीमतों पर असर पड़ता ही है।

इन सब तर्कों का औचित्य हो सकता है। पर बम्बई का एक समाचार सुन लीजिए—

कुछ बड़े व्यापारियों ने बम्बई के ग्राठ शीत भंडार गृहों में ढाई करोड़ रु० के मूल्य की दाल के अस्सी हजार बोरे जमा कर रखे हैं। हालांकि शीत भण्डार गृहों में ऐसी नाजुक खाद्य वस्तुएँ ही रखी जाती हैं जिनके जल्दी खराब होने की आशंका है, और शीत भण्डारों का किराया भी ज्यादा होता है, पर बाजार में दालों का कृत्रिम अभाव पैदा करके बाद में उसका मनमाना मूल्य वसूल करने का लालच इतना बड़ा है कि व्यापारियों को वह किराया नहीं अखरता। भजेदार बात यह है कि भण्डार में पड़ी इस दाल की रोज खरीद-फरोल्त होती है,

पर न लेवाल उसे उठाता है और न बिकवाल उसे निकलता है। अगले दिन फिर बाजार भाव के हिसाब से सौदा होता है। इस प्रकार सटो-रियों का यह सट्टा चलता रहता है और भण्डार में पड़े-पड़े दाल की कीमत अपने आप चढ़ती चली जाती है। हालाँकि गत वर्ष की अपेक्षा इस वर्ष दालों का उत्पादन एक लाख टन अधिक हुआ है, पर फिर भी दालों की कीमत निरन्तर चढ़ती जाने का रहस्य वह जमाखोरी और सट्टागिरी है।

रूस में कुछ वर्ष पहले इस प्रकार की शिकायत उपस्थित होने पर इसे इतना बड़ा अपराध माना गया था कि सटोरियों को सीधा गोली से उड़ा दिया था। शायद अन्य समाजवादी देशों में भी यह प्रयुक्ति इतनी ही समाज विरोधी मारी जाती हो। कुछ मुस्लिम देशों में चोरी आदि के लिए शरिवत के अनुशार अत्यन्त कड़े दण्ड की व्यवस्था है। समाचार-पत्र यह भी कहते हैं कि जब से पाकिस्तान में फौजी शासन आरम्भ हुआ है और जिया उल हक ने चोरी-डकैती के लिए हाथ काटने और स्त्रियों से छेड़खानी आदि करने पर सरें-आम कोड़े लगाने का आदेश दिया है, तब से वहाँ ये अपराध बहुत कम हो गए हैं।

प्रश्न यह है कि यदि कड़े दण्ड की व्यवस्था न हो तो क्या केवल नीतिकता की अपीलों से कुछ लोगों को समाज-विरोधी कार्यों से रोका जा सकता है? क्या अनुशासन के लिए भव आवश्यक है? तो आपात स्थिति में ही क्या बुराई थी?

सच तो यह है कि प्रजातंत्र और तानाशाही साथ-साथ नहीं चल सकते। एकाधिकारवाद जीवित रहेगा तो प्रजातंत्र की मृत्यु अवश्यंभावी है। और यदि प्रजातंत्र को जीवित रखना है तो आपात स्थिति को मरना ही होगा। पर प्रजातंत्र की भी कुछ शर्तें हैं। उसमें नागरिक के अधिकारों का जितना महत्व है, उससे कम महत्व नागरिक के कर्तव्यों का नहीं है। तानाशाही में अधिकार केवल शासक के होते हैं और कर्तव्य केवल नागरिक के। पर प्रजातंत्र में शासक भी कर्तव्यच्युत होने पर उसी तरह दँड़नीय है जैसे सामान्य

नागरिक । नहीं-नहीं, सामान्य नागरिक से उतने ही गुना अधिक दण्डनीय है वह व्यक्ति जो सत्ता के जितने ऊँचे आसन पर बैठा है ।

पर सब नागरिक एक जैसे नहीं होते । कथा है : एक बार तीन व्यक्ति चोरी के अपराध में पकड़े गए । एक था तिलक धारी पंडित, दूसरो था मामूली दुकानदार और तीसरा था पक्का दस नम्बरी । तीनों को काजी के सामने पेश किया गया । काजी ने पंडित को सिर्फ यह कह कर छोड़ दिया : 'आपको चोरी जैसा कुकर्म शोभा नहीं नहीं देता ।' दुकानदार को एक मास की जेल की सजा दी । और तीसरे व्यक्ति के लिए सिपाहियों से कहा कि इसका काला मुँह करके, गधे पर बिठा कर शहर में घुमाओ और बाद में 6 मास के लिए जेल में डाल दो । बादशाह तक शिकायत पहुँची कि काजी ने एक ही अपराध के लिए तीन व्यक्तियों को तीन तरह की सजा देकर इंसाफ का गला घोटा है । बादशाह ने काजी से पूछा । काजी ने कहा, मैं घंटे भर बाद जवाब दूँगा । घण्टे भर बाद उक्त तीनों अपराधियों की स्थिति के बारे में पता लगाया गया । पण्डित ने घर जाते ही आत्म-ग्लानि के कारण आत्म हत्या कर ली थी । दुकानदार जेल में पड़ा पश्चाताप के आँसू बहा रहा था । और तीसरा व्यक्ति जेल में भी मस्त होकर खुशी से नाच रहा था ।

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम तीन दिन समुद्र से मार्ग देने के लिए विनयपूर्वक प्रार्थना करते रहे । समुद्र के कान पर जूँ नहीं रेंगी । तब भगवान राम ने लक्ष्मण को संबोधित करते हुए कहा—

विनय न मानत जलधि जड़

गए तीन दिन बीत ।

लक्ष्मण बाँण सँभालहु

भय बिनु होय न प्रीत ।

जलधि जमाखोर है, और जड़ भी । यह जमाखोर विनय की भाषा कहाँ समझता है । बाण सँभालो लक्ष्मण !



## अति को भलो न बरसनो

बड़ा विचित्र स्वभाव है मनुष्य का । वह किसी भी अवस्था में सन्तुष्ट नहीं होता । जैसे अनन्त अतृप्ति के केन्द्र का नाम ही मनुष्य हो । और फिर जो चीज जितनी आसानी से उपलब्ध हो जाए, उसके प्रति विरक्ति भी उसे उतनी ही जल्दी धेर लेती है । वह हमेशा आसमान के तारे तोड़ कर लाने की बात करता है और इसी अहंकार में लिपटा हुआ अन्तरिक्ष के दुरुह मार्ग का अतिक्रमण करते हुए मनुष्य चन्द्रमा पर पहुँच गया ।

जब डारविन ने कहा कि मनुष्य भी अन्य पशुओं के समान एक पश्च है, तो मनुष्य के अहं को बड़ी चोट लगी । वह अपने आपको ईश्वर पुत्र घोषित करता था, पर डारविन ने उसे बानर-पुत्र घोषित किया, तो उसे बहुत गुस्सा आया । हजारों सालों से मनुष्य मानता आया था कि यह पृथ्वी ही ब्रह्माण्ड का केन्द्र है और सूरज हमारी जमीन का ही चक्कर लगाता है । हमारी पृथ्वी सूर्य का चक्कर लगाए, यह मानने में उसे आपत्ति थी, क्योंकि उसका अहं इससे आहत होता था । जब कॉपरनिकस और गैलिलियो ने कहा कि सूरज नहीं, हमारी पृथ्वी ही सूरज का चक्कर लगाती है, तो धर्मधर्जी लोगों ने उनका विरोध किया । इस प्रकार के विरोध में किस हद तक हृदयहीनता समाविष्ट थी इसका उदाहरण है गे-आर-द बूनों जैसे लोगों को आग में जिन्दा जला देना । मध्यकाल का ईसाइयत का इतिहास इस प्रकार के उदाहरणों से ओत-प्रोत है ।

बनर्ड शा ने एक बार कहा कि यह बात गलत है कि पृथ्वी सूरज का चक्कर लगाती है । सही बात यह है कि सूरज ही पृथ्वी का चक्कर

लगाता है। किसी ने पूछा कि आप किस आधार पर ऐसा कहते हैं? अब तो सब तरह से प्रमाणित हो गया है कि पृथ्वी ही सूर्य का चक्कर लगाती है। तब बनर्ड शा ने कहा था कि मैं इसी आधार पर कहता हूँ कि बनर्ड शा इस पृथ्वी पर रहता है। जिस पृथ्वी पर मैं रहता हूँ वह किसी का चक्कर कैसे लगा सकती है? शा ने यह बात विनोद में कही थी, लेकिन यह बात पूरी आदमियत पर लागू होती है।

आदमी के इस अहं और उसकी सतत अतृप्ति ने एक विचित्र स्थिति पैदा कर दी है। आदमी प्रकृति पर काबू पाना चाहता है, और प्रकृति है कि उसे लगातार पछाड़ती रहती है। क्या दोनों में यह संघर्ष का सम्बन्ध अनिवार्य है? यह तो कौन कह सकता है? पर जहाँ तक दृष्टि जाती है, इस संघर्ष से बचने का रास्ता नजर नहीं आता।

यदि कहीं लगातार कई सालों तक सूखा पड़ता रहे, तो प्रकृति को अपनी इच्छा के अनुसार चलाने के लिए, वर्षा लाने के लिए, मनुष्य यज्ञ-याग, पूजा-पाठ और दान-धर्म करता है। पर जब लगातार वर्षा पर वर्षा आती जाए तब भी मानव को चैन नहीं। तब गाँव का आदमी अपने भोलेपन में कहता है—‘रामजी ने भी कैसी अनीति उठा रखी है?’ आदमी अनावृष्टि से जितना हाहाकार करता है, उससे अधिक हाहाकार अतिवृष्टि से करता है। न उसे अनावृष्टि चाहिए, न अतिवृष्टि। न ईति न भीति। न रेगिस्तान, न पहाड़, न समुद्र। न सरासर अभाव, न सरासर इफरात। तभी महात्मा बुद्ध की मध्यमा प्रतिपदा याद आती है। जैसे गीता ने कहा है—

युक्ताहार विहारस्य युक्त चेष्टस्य कर्मसु ।  
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ॥

—सन्तुलित भोजनाच्छादन, सन्तुलित शयन-जागरण और प्रत्येक कार्य में सन्तुलित चेष्टा की प्रेरणा देने वाला योग ही दुःखनाशक होता है। शरीर और मन को अतियों की रस्सियों से बाँधकर विचरण करने वाला योगी कभी सुखी नहीं हो सकता। ‘अति सर्वत्र वर्जयेत्’—जीवन का स्वर्णम सिद्धान्त है। नीतिकार कह गए हैं—

अति को भलो न बरसनो  
 अति की भली न घुप्प ।  
 अति को भलो न बोलनो  
 अति की भली न चुप्प ॥

पर न मानव अतियों के प्रेम से बाज आता है, न प्रकृति । अकेली प्रकृति को ही दोष क्यों दें ? जब स्वयं मानव ने ही आर्थिक और सामाजिक विषमता के कृत्रिम पहाड़ खड़े कर दिए हों तो प्रकृति से ही सन्तुलन की आशा क्यों की जाए ? प्रकृति तो वैसे भी जड़ है—चेतना-शून्य, विवेक-हीन । पर क्या मानव भी जड़ है ?

नहीं, नहीं, ऐसी बात मुँह से मत निकालना । नहीं तो उसके अहं को चोट लगेगी । और आहत व्यक्ति उतना ही खतरनाक हो सकता है जितनी खतरनाक धायल शेरनी होती है । शेरनी आहत न होती, तो देश में आपातस्थिति क्यों लागू होता ? क्यों प्रजातंत्र की हत्या होती ? क्यों कितने ही घरों के दीपक सदा के लिए बुझ गए होते ?

मनुष्य का अहं अपने स्थान पर है और 'महान समतलकर्ता' (ग्रेट-लेवलर) के रूप में प्रकृति अपने स्थान पर । जब आदमी का बुलडोजर चलता है, तब वह वृक्ष, वनस्पति, मकान-दूकान, झुग्गी-झोपड़ी, नर-नारी, बच्चे-बूढ़े—कुछ नहीं देखता, वैसे ही अब देश में अतिवृष्टि के रूप में प्रकृति का बुलडोजर चला है, तो वह भी न गाँव कस्बा देखता है, न नगर-महानगर । मानव का गर्व खर्व करने के लिए प्रकृति अपने अहं का रौद्र रूप दिखाने पर उतर आई है ।

एक बात देखकर आश्चर्य होता है । देश के विभिन्न भागों में कभी अनावृष्टि और कभी अतिवृष्टि का यह प्रकृति-ताण्डव आकस्मिक घटना नहीं है । हर वर्ष जब किसी प्रदेश विशेष में भयंकर सूखा पड़ता है तब वहाँ सिचाई की व्यवस्था की चर्चा होती है, और लाखों-करोड़ों रुपए की योजनाएँ बनाई जाती हैं । पर ज्यों ही मौसम बदला कि सब कागजात का बस्ता बन्द करके मुशीजी अपने घर लौट आते हैं । यही बात अतिवृष्टि और बाढ़ के साथ है । हर वर्ष जब किसी प्रदेश में बाढ़ आती है, तब बाढ़ नियंत्रण योजनाओं की चर्चा प्रारम्भ हो जाती है ।

अधिकारीगण सक्रिय नजर आते हैं। पर मौसम बदला कि बस्ता बन्द। अगले साल जब फिर बाढ़ आएगी, तब फिर बस्ता खुलेगा।

एक छोटी सी कहानी याद आती है। एक छोटे-से गाँव का निवासी एक रात एक बड़े नगर में आया। इस नगर में वह कभी अपनी किशोरावस्था में विद्याध्ययन कर चुका था। उसका एक पड़ोसी का लड़का भी उसी विद्यालय में और उसी छात्रावास में था, जिसमें कभी वह ग्रामीण रह चुका था। ग्रामीण ने सोचा—उस बात को अब तीस-चालीस बरस होने को आई, जरा चलकर देखना चाहिए कि अब कितना परिवर्तन आ गया है।

उस वृद्ध ग्रामीण ने छात्रावास के दरवाजे पर दस्तक दी। दरवाजा खुला। वृद्ध ने कहा—‘बेटा ! मैं यह देखने आया हूँ कि इतने अर्से में क्या-क्या परिवर्तन हो गए हैं।’ वृद्ध ने देखा कि इमारतें नई बन गई हैं, बाग-बगीचे और सड़कें खूब साफ-सुथरी हैं। छात्रों की संख्या कई गुना बढ़ गई हैं। भवनों का खूब विस्तार हो गया है। अचानक उस छात्र की मेज पर पड़ी बाइबिल पर वृद्ध की नजर पड़ी। उसने जिल्द खोल कर देखी, तो अन्दर बाइबिल नहीं, एक रूमानी उपन्यास था। छात्र ने घबराकर कहा : ‘यह मेरी किताब नहीं है, मैं तो पड़ोसी से माँग कर लाया हूँ। बूढ़ा हँसा, बोला—‘बेटा, घबराओ मत। हम भी इसी तरह बाइबिल के कवर में छिपाकर उपन्यास पढ़ा करते थे। वृद्ध ने चारों तरफ नजर डाली तो उसे सामने ही कपड़ों की अलमारी दिखाई दी। उसने आलमारी का दरवाजा खोला तो अन्दर एक लड़की छिपी खड़ी थी। अब तो वह युवक बहुत घबराया और तुरन्त सफाई देते हुए बोला—‘यह मेरी दूर के रिश्ते की बहन है। मुझसे मिलने आई थी। वृद्ध ने कहा—‘बेटा, विल्कुल मत घबराओ। हम भी यही करते थे और यही कहा करते थे।’

जब वृद्ध वापिस गाँव पहुँचा तो लोगों ने पूछा, ‘क्या देखकर आए ?’ वृद्ध ने कहा—‘जो कुछ देखा, उससे बड़ा हैरान हुआ। मकान बदल गए, सड़कें नई हो गई, फुलवारी शानदार हो गई, लेकिन आदमी वही का वही है।’ □

## मैं उसी दिन शांत होऊँगा

भला कभी कोई तलवार से भी दाढ़ी बनाता है ?

पर एक बार रविन्द्रनाथ ठाकुर ने काजी नजरुल इस्लाम की आलोचना करते हुए कहा था कि तुमने तलवार से दाढ़ी बनाने का काम प्रारम्भ कर दिया है ।

इसके पीछे एक इतिहास है ।

काजी नजरुल इस्लाम बचपन से ही रवीन्द्र के बड़े भक्त थे । जब नजरुल स्कूल में पढ़ते थे, तब अपनी अबोध किशोरावस्था से ही एकान्त में रवीन्द्र के गीत गाते हुए मस्त हो जाया करते थे । कण्ठ अच्छा था, उच्चारण स्पष्ट था, छन्द और यति की पहचान थी, धीरे-धीरे मंच पर भी वे रवीन्द्र के गीत गाने लगे । उनके कण्ठ की सर्वत्र सराहना हीती । स्कूल से लौटते समय घने वृक्षों के नीचे बैठकर जब वे रवीन्द्र के गीत गाते तो उनके चारों ओर एकत्रित उनकी बाल मित्रमंडली भी विभोर हो जाती । अक्सर उनके साथी उन्हें रवीन्द्र का शिष्य कहकर चिढ़ाते थे । उन्होंने एकलव्य की तरह गुरु को विना देखे ही अपने मन में रवीन्द्र को गुरु धारण कर लिया था । वे बचपन में पूर्णतः रवीन्द्रमय थे और रवीन्द्र की काव्य-सरिता में निर्वाध अवगाहन किया करते थे ।

जब यौवन में पदार्पण किया, तब भी रवीन्द्र का जादू मन से उतरा नहीं । सेना में गए, तो वहाँ भी रवीन्द्र संगीत की स्वर-लिपि उनके साथ रही । कवायद करते, बोझ ढोते या बन्दूक से निशाना साधते हुए भी अक्सर कण्ठ में रवीन्द्र के किसी गीत की धुन गूँज रही होती ।

सेना से लौटने के बाद कलकत्ता के छोटे-बड़े सामाजिक समारोहों

में नजरुल केवल रवीन्द्र के गीत गा-गाकर ही साहित्य रसिक-समाज में आदर और प्रेम पाते रहे। रवीन्द्र के प्रति नजरुल की यह भक्ति इस हद तक बढ़ गई कि जब रवीन्द्र को नोवल पुरस्कार मिला और कुछ लोगों ने ईर्ष्यादाद्य बोकर उन पर ऐश्वर्य में लीन, पाश्चात्य प्रभाव से ग्रस्त, अभिजात वर्ग का वंशज होने के कारण अपवाद और लांछन लगाने प्रारम्भ किए तो नजरुल एकदम आधात से भर उठे और आवेश में आकर रवीन्द्र के एक आलोचक पर बांस की लाठी से प्रहार कर बैठे। उस आलोचक का सिर लहू-लुहान हो गया। कहा जाता है कि उस व्यक्ति को भड़का कर कुछ लोगों ने नजरुल पर इस्तगासा दायर करवा दिया। इस्तगासे में नजरुल ने वकीलों की जिरह का निर्भीकतापूर्वक जवाब दिया और स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि इस व्यक्ति ने मेरे गुरु की निन्दा की है, इसलिए मैंने इस पर प्रहार किया है। सारा विवरण सुनने के बाद मजिस्ट्रेट ने नजरुल को अदालत उठने तक वहाँ रुके रहने की सजा दी थी।

नजरुल ने रवीन्द्र की प्रशस्ति में कई कविताएँ भी लिखी थीं। ‘संचिता’ के नाम से प्रकाशित अपने श्रेष्ठ काव्य-रचना-संकलन को लेकर वे स्वयं गुरुदेव के पास गए थे और उसके समर्पण के पृष्ठ पर ‘विश्व-कवि-सन्नाट श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, श्री श्रीचरणार विन्देषु’ लिखकर उन्हें अपने हाथ से पुस्तक समर्पित की थी।

रवीन्द्र-भक्ति के रूप में उनके जीवन की यह घटना भी उल्लेख-नीय है।

एक बार नजरुल एक कमरे में बैठे एक गीत की रचना कर रहे थे। साथ वाले कमरे में कोई रवीन्द्र-संगीत का एक सुर साध रहा था। नजरुल अपना गीत लिखना भूल गए और रवीन्द्र के गीत के उस सुर में खो गए। उन्होंने अपनी लिखी अधूरी कविता को फाड़कर फेंक दिया। उनकी आँखें नम हो उठीं। किसी ने पूछा—‘यह क्या किया काजी दा !’ कवि अपनी उन्हीं खोई-खोई आँखों से निहारते हुए बोले—‘कवि-गुरु का गीत नहीं सुना ? क्या इसके बाद भी और कुछ लिखना शेष रह जाता है ?’

धीरे-धीरे गुरुदेव भी नजरुल की प्रतिभा को पहचानने लगे थे । एक बार उन्होंने नजरुल को शान्ति निकेतन में आकर स्थायी रूप से रहने का भी निमंत्रण दिया था । पर नजरुल को लगा कि वहाँ जाकर मेरा पृथक अस्तित्व लुप्त हो जाएगा, इसलिए नहीं गए ।

जिस व्यंग का शुरू में जिक्र किया है, वह गुरुदेव ने इसलिए किया था कि उन्हें नजरुल का सक्रिय राजनीति में हिस्सा लेना पसन्द नहीं था । हिंसात्मक विद्रोह की भलक थी, वह भी गुरुदेव के लिए दुष्प्रच थी । रवीन्द्र चिरंतन वाणी के गायक थे और नजरुल अग्नि-वीणा के गायक थे । संगमरमर के मन्दिर में रत्न-जटिट सरस्वती प्रतिमा के उपासक गण नजरुल की कविता को 'अत्यन्त कर्कश स्वर की चिड़िया का आलाप' कहकर ताना दिया करते थे । 'शनिवारेर चिट्ठी' नामक पत्रिका इसमें अग्रणी थी । नजरुल ने 'मेरी कैफियत' में इसका उत्तर देते हुए लिखा था :

मेरी एक प्रेयसी  
जो प्रत्येक शनिवारी पत्र में  
मुझे गाली देती हुई कहती है :  
तुम एक ऐसी चिड़िया हो  
जिसका स्वर अत्यन्त कर्कश है ।'  
मैं कहता हूँ : प्रिये ! मैं  
सरे बाजार तुम्हारा भण्डा  
फोड़ दूँगा ।' और तब तुरन्त  
चिट्ठी बन्द हो जाती है ।

जो सुविधाजीवी दरबारी लेखक थे, उन्हें अभावग्रस्त मध्य वर्ग के प्रतिनिधि जागरूक लेखकों का रवैया पसंद नहीं था और यह आकोश किसी न किसी रूप में साहित्य में भी प्रकट हो रहा था । नजरुल ने अपनी एक कविता में 'रक्त' के स्थान पर 'खून' शब्द का प्रयोग किया था । इस पर तो उस समय एक आन्दोलन ही चल पड़ा था । स्वयं रवीन्द्र ने 'खून' शब्द के प्रयोग पर बड़ा तीव्र कटाक्ष करते हुए कहा था कि परम्परा की कल्पना के आकाश में रक्त, राग, अरुण और रंग

आदि शब्द चिर-पुरातन भी, हैं और चिर नवीन भी, पर नए लेखक उषा को यदि अरुण और रक्ताभ न कहकर 'खूनी रंग वाली' कहेंगे तो इससे काव्य-संस्कार विकृत होगा ।'

इसका नज़रुल ने बड़ा सटीक उत्तर दिया था । उन्होंने लिखा था : मेरा अपराध यह है कि मैं तरुण हूँ और तरुण अभिमन्यु पर कवि गुरु अपना बाण चला रहे हैं । लेकिन वे यह नहीं बताते कि मैंने किस संदर्भ में रक्त शब्द के स्थान पर खून शब्द का प्रयोग किया है । क्या कट्टर सनातनियों की तरह आदमियों को ही नहीं, शब्दों को भी अछूत की तरह चौके से अलग रखने का कुछ औचित्य है ? सम्भ्रांत हिन्दू भी पायजामा, शेरवानी, टोपी और कभी-कभी लुंगा का इस्तेमाल करते हैं, पर उन पर कोई आरोप नहीं लगाता । लेकिन वही पोशाक जब मुसलमान पहन लेता है तब लोग उसे मिर्यां साहब कहकर बुलाने लगते हैं । स्वयं गुरुदेव भी पायजामा और टोपी धारण करते हैं । खून शब्द का प्रयोग मैंने इसलिए नहीं किया कि मैं मुसलमान हूँ, बल्कि उस शब्द के साथ एक खास तरह का सांस्कृतिक परिवेश जुड़ा हुआ है । हो सकता है, कट्टरपंथी पंडित लोग उसे न समझें, पर साहित्यकार तो कला और संस्कृति में उस नए रंग के महत्त्व को समझेंगे ही । मैं वह जानता हूँ कि रक्त-धारा के स्थान पर खून-धारा नहीं लिखा जा सकता, पर यह भी जानता हूँ कि खून-खराबी के स्थान पर यदि रक्त खराबी या रक्त विकार लिख दिया गया तो अर्थ का अनर्थ हो जाएगा ।

गुरुदेव ने 'निर्भर का स्वप्नभंग' नाम एक बहु-प्रशंसित कविता लिखी थी जो उस समय बड़ी क्रांतिकारी मानी गई थी । उसी के आस-पास नज़रुल ने 'विद्रोही' कविता लिखी । इस एक कविता ने नज़रुल को एक ही रात में कहीं से कहीं पहुँचा दिया और सारे बंगाल में प्रसिद्ध कर दिया । इसमें भी क्रांति का स्वर था । पर दोनों के तेवर अलग थे । नज़रुल और रवीन्द्र की इस साहित्यिक प्रतिद्वन्द्विता के संबंध में एक किस्सा मशहूर है—

एक दिन नज़रुल 'गुरु जी, गुरु जी' चिल्लाते हुए कवि गुरु के घर पहुँच गए और बोले—

मैं उसी दिन शांत होऊँगा : : १४५.

‘गुरु जी ! मैं आपकी हत्या करने आया हूँ ।’ रवीन्द्र इस अप्रत्याशित हमले से विचलित तो हुए, पर धैर्य नहीं छोड़ा । नजरुल को बैठने के लिए आसन दिया, ताकि हत्यारा पूर्ण निश्चन्तता के साथ हत्या कर सके । और तब नजरुल ने गुरुदेव के सामने अपनी ‘विद्रोही’ कविता का पाठ किया । नजरुल की साहसिक प्रतिभा को रवीन्द्र ने मुख्य भाव से सराहा और उनकी पीठ थपथपाते हुए स्वीकार किया कि इस कविता से तुमने मेरी हत्या कर दी है ।

नजरुल के प्रशंसकों ने यह मनगढन्त किस्सा गढ़ कर भले ही अपने नायक की प्रशंसा में अतिशयोक्ति से काम लिया हो, पर ‘विद्रोही’ कविता से रवीन्द्र की हत्या तो नहीं हुई, हाँ, नजरुल को वह अवश्य अमर कर गई । इस लम्बी कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं—

महा विद्रोही रण-क्लान्त  
आमि सेई दिन होव शान्त  
जबे उत्पीड़ितेर कन्दन-रोर  
आकाशे वातासे ध्वनिवे ना  
अत्याचारीर खड्ग कृपाण  
भीम रणभूमे रणिवे ना—  
विद्रोही रणक्लान्त  
आमि सेई दिन होव शान्त ।

—मैं रण क्लान्त विद्रोही उसी दिन शान्त होऊँगा जब उत्पीड़ित की कन्दर-ध्वनि आकाश की वायु में नहीं गूंजेगी, जब अत्याचारी की कृपाण रणभूमि में नहीं घूमेगी, मैं उसी दिन शान्त होऊँगा ।

□

## अर्जुन का व्यामोह

कहते हैं कि एक बार नौशेरवाँ के राज्य में भ्रष्टाचार इतना बढ़ गया कि वह स्वयं उससे चिन्ताकुल होकर अपने गुरु के पास पहुँचा और उनसे भ्रष्टाचार के निवारण का उपाय पूछा। गुरु ने कहा—‘इसका उपाय तो बहुत आसान है, बशर्ते कि आप उसे करने को ईमानदारी से तैयार हों।’ नौशेरवाँ ने कहा—‘आप आज्ञा करिए। अपने राज्य में से भ्रष्टाचार को सर्वथा समाप्त करना चाहता हूँ और उसके लिए जो कुछ आप कहें, करने को सहर्ष तैयार हूँ।’ गुरु ने कहा—‘आप एक दिन के लिए राज सिंहासन और राजदण्ड मुझे दे दीजिए—सिर्फ एक दिन के लिए। मैं उस एक दिन में ही भ्रष्टाचार को समाप्त न कर दूँ, तो मेरा नाम नहीं। उस एक दिन में मैं अपनी इच्छा के अनुसार कार्य करने को स्वतंत्र रहूँगा और आप मेरे काम में कोई हस्तक्षेप नहीं कर सकेंगे।’ नौशेरवाँ ने सोचा कि सिर्फ एक दिन ही की तो वात है। किसी तरह राज्य से भ्रष्टाचार समाप्त होना चाहिए। गुरु जी के वचन की भी सत्यता की परीक्षा हो जाएगी।

गुरुजी ने गही सम्भालते ही सारे राज्य में मुनादी करवा दी कि जिस जिस को भ्रष्टाचार, अनाचार और अत्याचार की जो-जो शिकायत हो शाम को सूर्यास्त होने से पहले अपनी-अपनी शिकायत लिख कर दरवार के मुख्य द्वार के बाहर रखे बड़े ड्रम में डाल दे। मुनादी होते ही शिकायतों का ताँता लग गया। अपनी-अपनी शिकायतें लिख कर लोग उस ड्रम में डालने लगे। सूर्यास्त का समय होने तक ड्रम ऊपर तक भर गया।

नियत समय समाप्त होते ही गुरु राजदण्ड हाथ में संभालते हुए

आए और ड्रम में जो शिकायत सबसे ऊपर पड़ी थी, उसे हाथ में लेकर सिपाहियों को बुलाकर आदेश दिया कि जिस व्यक्ति के विरुद्ध यह शिकायत है, उसे तुरन्त पकड़ कर लाओ, कोड़े लगाते हुए सारे शहर में घुमाओ और कल सूर्योदय होते ही उसे सूली पर चढ़ा दो।

यह आदेश देकर नौशेरवाँ के गुरु ने राजदण्ड राजा को संभलवाया और राजा से कहा—‘बस मेरा काम पूरा हो गया । अब मुझे वापिस अपनी कुटिया में जाने की इजाजत दीजिए ।’ राजा ने कहा—‘इतने मात्र से देशव्यापी भ्रष्टाचार कैसे दूर होगा । यह तो एक ही व्यक्ति की शिकायत पर अमल हुआ और हजारों व्यक्तियों की जो शिकायतें आईं पड़ी हैं, उनका भी तो निपटारा होना चाहिए ।’ गुरु ने कहा—‘अब और किसी अपराधी को दण्ड देने की जरूरत नहीं है । इस एक व्यक्ति को दण्ड देने से ही आपके समस्त राज्य में भ्रष्टाचार समाप्त हो जाएगा ।’

जिस व्यक्ति को सूली पर चढ़ाने का आदेश दिया गया था, वह और कोई नहीं, शहजादा था—नौशेरवाँ का बेटा ।

एक जापानी हाइकु (लघु कविता) है—

किरि ताकु मो आरि  
किरि ताकु मो नाशि  
नुसुवितो औ  
तोराएते मिरोवा  
वागा को नारि ।

इसका अनुवाद श्री सत्यभूषण वर्मा ने यों किया है—

मैं उसे मारना चाहता हूँ, पर  
मैं उसे नहीं मारना चाहता—  
मैंने चोर को  
पकड़ लिया है, पर  
वह मेरा पुत्र है ।

समस्या की जड़ यही तो है । प्रशासक भी आखिर मनुष्य होता है । मानव-सुलभ कमजौरियाँ उसमें भी होती हैं । पर जो प्रशासक इन कम-जोरियों से ऊपर नहीं उठ पाता और न्याय-व्यवस्था में रक्त-सम्बन्धों

को महत्व देता है, सारी गीता का उपदेश उसी के लिए है। अपने सामने कौरवों की ग्यारह अक्षौहिणी सेना को देखकर जब अर्जुन को अपने रक्त सम्बन्धों का स्मरण हो आया तो उसके हाथ से गाण्डीव छूट गया, शरीर काँपने लगा और अर्धमूर्छित की सी अवस्था में उसने अपने सारथी श्री कृष्ण से कहा मैं युद्ध नहीं करूँगा। मुझे राज्य नहीं चाहिए। मैं भीख माँगकर जीवन-यापन कर लूंगा, पर अपने नाते-रिश्तेदारों और बन्धु-बांधवों पर हथियार नहीं उठाऊंगा। श्रीकृष्ण भी उस समय सव्यसाची की हाँ में हाँ मिला देते और अहिंसा और क्षमा का उपदेश देते, तो न महाभारत होता, न गीता होती।

इसीलिए क्षमावादियों का समाधान करते हुए प्रधानमंत्री श्री देसाई ने कहा था कि मैं व्यक्तिगत रूप से अपराधी को क्षमा कर सकता हूँ, पर प्रशासन का काम तो न्याय करना है। उसी न्याय की खातिर आपातकाल के दौरान हुई ज्यादतियों के निराकरण के लिए आयोग बिठाए गए हैं। कुछ लोग कहते हैं कि आयोग बिठाना भी कोई काम है? सरकार के सामने देश में निरंतर बढ़ती मंहगाई, निर्भयता के नाम पर सीमा का अतिक्रमण करती हुई अराजकता और आद्योगिक अशान्ति आदि इतनी प्रमुख समस्याएं हैं, उनको निपटाने में अपनी शक्ति लगानी चाहिए—आयोग-फायोग में क्या रखा है। जो हो गया सो हो गया—

बीती ताहि बिसार दे आगे की सुधि लेय।

पर जब लौह-निर्मित गृहमंत्री आयोग बिठाने से बाज नहीं आए, तो लोगों ने यह भी कहना शुरू किया—‘पहले आपातकाल था, अब आयोग काल है।’ कुछ चतुर सुजानों ने तो श्री चरणसिंह का नाम परिवर्तन करके उनका नया नामकरण कर दिया और उन्हें व्यंग से ‘कमीशनसिंह’ कहना आरम्भ कर दिया। पर कमीशनसिंह को किसी भी प्रकार का ‘कमीशन’ कमीशन बिठाने से रोक नहीं सका।

प्रश्न यह है कि इन आयोगोंकी उपयोगिता क्या होगी। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से अब तक १६५ आयोग बैठ चुके हैं और एक-एक आयोग

का कार्यकाल औसतन दो साल रहा है। कुछ आयोग ६ साल के बाद अपनी रिपोर्ट दे सके। एक आयोग पर खर्च भी कम नहीं होता। प्रत्येक आयोग के लिए पूरा सचिवालय जैसा कर्मचारी मंडल रखना पड़ता है और उस पर प्रतिदिन ६ हजार रु० से कम खर्च नहीं होता। एक आयोग पर उसके आकार के हिसाब से ५० हजार से लेकर ५० लाख तक रु. खर्च हो जाता है। किसी-किसी घटना की जाँच के लिए एकाधिक आयोग भी बिठाने पड़ जाते हैं। महात्मा गांधी की हत्या के १७ साल बाद दूसरा आयोग बिठाया गया। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस की कथित मृत्यु के सम्बन्ध में दो जाँच आयोग बैठ चुके और अब तीसरे आयोग की माँग की जा रही है। बहुत बार तो इन जाँच आयोगों की रिपोर्ट संसद के पटल पर भी नहीं रखी जाती, क्योंकि सरकार के लिए वैसी कोई बाध्यता नहीं है। जब सरदार प्रतापसिंह कैरो पर दास आयोग ने पद के दुरुपयोग और अपने पुत्र तथा रिशेदारों द्वारा सम्पत्ति बटोरने में सहायता का आरोप सही पाया, और श्री कैरो ने मुख्यमंत्री पद छोड़ने से इन्कार कर दिया, तब तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री लालबहादुर शास्त्री ने वह रिपोर्ट प्रकाशित कर दी और कैरो को पद छोड़ने के लिइ बाध्य होना पड़ा। पर बहुत बार विभिन्न आयोगों की रिपोर्टों पर कोई कार्रवाई नहीं हुई और वे शीतागार में डाल दी गईं।

अब जो आयोग बिठाए गए हैं उनके सुचारू संचालन के लिए यद्यपि उन्हें पर्याप्त अधिकार दिए गए हैं, पर आपातकाल के दौरान ज्यादतियाँ करने वाले भी कच्चे खिलाड़ी नहीं थे। कोई समझदार चोर अपने पीछे चोरी का कोई चिन्ह छोड़ कर जाता है क्या? कितनी ही फाइलें आग की भेट हो गईं और कितने ही प्रमाण नष्ट हो गए। फिर ज्यादती के लिए कभी कोई लिखित आदेश थोड़े ही देता है। इसलिए यह नितान्त सम्भव है कि बहुत से आरोपों के लिए कोई दो टूक प्रमाण देना सम्भव न हो। फिर आयोगों ने यदि अपनी रिपोर्ट देने में अनावश्यक विलम्ब कर दिया, तो विलम्बित न्याय को न्याय का अभाव कहते भी किसी को संकोच नहीं होगा।

इन आयोगों की रिपोर्ट यदि सही सलामत ठीक समय पर आ भी

## १५० :: ओ ! मेरे राजहंस

गई, तो वह केवल अनुशंसात्मक होगी, इतने मात्र से अपराधियों को दण्डित नहीं किया जा सकता। उसके बाद अदालत में मुकदमा चलेगा और फिर वही सारी प्रक्रिया दुहराई जाएगी।

तब तक शायद नए चुनाव आ जाएंगे, या तथाकथित अपराधी दल बदल कर किसी नए इष्टदेव की आराधना प्रारम्भ कर देंगे और व्यामोह में पड़े अर्जुन को फिर गीता के उपदेश की जरूरत महसूस होगी।



## सत्य से खिलवाड़

जब यूरोपवासी भारत के संसर्ग में आए तो उनका एक बात की ओर विशेष ध्यान गया। उन्होंने देखा कि यहाँ साधु-संन्यासियों का और ब्राह्मण पंडितों का बड़ा मान है। वे लोग धर्मगुरु की तरह माने जाते हैं और उनके बचनों पर जनता श्रद्धा रखती है। भारतीय जनता की इस मनोवृत्ति को भाँपकर उस युग में मुक्ति फौज के ईसाई प्रचारकों ने भी अपने वस्त्र भगवा रंग से रंगकर और साधु-संन्यासी का भेष बनाकर प्रचार करना प्रारम्भ किया। कुछ पादरियों ने ब्राह्मणों के से नाम रखकर और यज्ञोपवीत धारण करके लोगों को अपने मत में दीक्षित करने का प्रयत्न किया। तब न केवल बाईबिल संस्कृत में लिखी गई, प्रत्युत 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' इस वेदमंत्र को आधार बनाकर ईसामसीह को भारतीय देवमाला में स्थान देने का भी प्रयत्न किया गया।

जब इन उत्साही पादरियों ने देखा कि भारतीयों में वेदों के प्रति असीम आस्था है, पर अधिकांश जनता अशिक्षित होने के कारण उनके दर्शन तक से चंचित है, तब कोलब्रुक आदि विद्वानों ने वेदों को प्राप्त करना चाहा। पर पण्डितों ने उन्हें ठग लिया। सन १७६१ की बात है। राबट डी० नोबिली नामक एक पादरी ने किसी भारतीय पण्डित को प्रभूत प्रलोभन देकर पुराण और बाईबिल-मिश्रित एक पुस्तक संस्कृत में लिखवाई और उसे वेद के नाम से लोगों में प्रचारित किया जाने लगा। उसका फ्रैंच भाषा में भी अनुवाद हुआ और पेरिस के पुस्तकालय में बड़ी घूमधाम से उसे रखा गया। सन १७७८ में उस बड़े-बड़े लेख निकले और यूरोप भर में हिन्दुओं की इस अक्षय निधि की खोज की कथाएँ प्रचलित होने लगीं।

धीरे-धीरे मैक्समूलर के कान तक भी इस अभिनव वेद के प्राप्त होने की खबर पहुँची । वेद के प्रामाणिक विद्वान के रूप में मैक्समूलर अन्तर्राष्ट्रीय स्थाति प्राप्त कर चुके थे । उन्होंने भी वह पुस्तक मंगाकर देखी और अन्त में समाचार पत्रों में वक्तव्य दिया कि उक्त पुस्तक वेद नहीं है, बल्कि एक वचकाना षड्यंत्र है । इस प्रकार भण्डाफोड़ हो जाने से वह षड्यंत्र विफल हो गया । उस समय अंग्रेजों का राज्य तो था ही, यदि शासकों की ओर से उस ग्रन्थ को मान्यता मिल जाती और मैक्समूलर सत्य के पक्ष में अपनी जबान न खोलते, तो शायद आज वही पुस्तक वेद के नाम से जानी और मानी जाती ।

इसी प्रकार एक अल्लोपनिषत् भी तो तैयार हुई थी और बहुत से विद्वानों तक ने उसे उपनिषदों की श्रेणी में गिनना प्रारम्भ कर दिया था । वह अल्लोपनिषत् इस प्रकार शुरू होती थी—

अस्माल्लां इल्लेमि त्रावरुणा

दिव्यानि धत्ते ।

इल्लल्ले वरुणो राजा पुनर्दंदुः ।

हया मित्रो इल्लां इल्लल्ले इल्लां

वरुणो मित्रस्तेजस्कामः ॥

कुछ फारसी-मिश्रित श्लोकों की रचना भी उसी उद्देश्य से की गई थी, जिसका एक उदाहरण इस प्रकार है—

हेच फिक्रं न कर्तव्यं कर्तव्यं जिकरे खुदा ।

खुदा ताला प्रसादेन सर्वं कार्यं फतह भवेत् ॥

इतना ही क्यों, कभी अकबर ने यह प्रचारित किया था कि मैं पूर्व-जन्म में हिन्दू था और मेरा नाम मुकुन्द ब्रह्मचारी था । अपने मुकुन्द ब्रह्मचारी होने की पुष्टि में उसने यह श्लोक भी बनाया था—

वसुरन्ध्रवाणचन्द्रे तीर्थं राज प्रयागे

तपसि बहुलपक्षे द्वादशी पूर्वं मासे

नखशिख तनुहोमे सर्वभूम्याधिपत्ये

सकलदुरितहारी ब्रह्मचारी मुकुन्दः ॥

—अर्थात् संवत् १५६८ की फाल्गुन शुक्ला द्वादशी को प्रातःकाल

तीर्थराज प्रयाग में सकल पृथ्वी का राज्य प्राप्त करने की इच्छा से सर्व विघ्ननाशक मुकुन्द ब्रह्मचारी ने नख से शिखा तक अपना सारा शरीर अग्निदेवता की भेट कर दिया था । अकबर कभी-कभी यज्ञोपवीत भी पहन लेता था । अपने समय के बड़े-बड़े लोगों को प्रभावित करने के लिए इस प्रकारकी कूटनीतिक चालें वह प्रायः चलता रहता था । उसने फतह-पुरस्तीकरी में एक विशाल इवादतखाना भी बनवाया था जिसमें भारत के समस्त सम्प्रदायों के आचार्य एकत्र होते थे । पारसियों, बौद्धों और जैनियों वर्मगुरुओं को उस इवादतखाने में शामिल करने के लिए उसने विशेष प्रयत्न किया था । उसने 'दीन इलाही' के नाम से अपना एक अलग सम्प्रदाय चलाने का भी प्रयत्न किया था, पर उसमें उसे सफलता नहीं मिली ।

जो भी शासक होता है उसे केवल राजनीतिक सत्ता प्राप्त करके सन्तोष नहीं होता । वह जनता के मन और बुद्धि को प्रभावित करने के लिए भी प्रयत्न करता है । यह भले ही स्वाभाविक लगे, पर इसके औचित्य की एक सीमा है ।

जब कोई राजतंत्र किसी विचारधारा का प्रचार करना अपना कर्तव्य समझने लगता है तब वह अपनी नेष्ट विचारधारा के प्रति अस-हिष्णु बन जाता है । भारत के वे प्राचीन पुस्तकालय, जिसमें भारत के शत-सहस्र वर्षों का ज्ञान-भण्डार सुरक्षित था, आखिर क्यों अग्नि की भेट किए गए ? तक्षशिला, विक्रमशिला, नालन्दा, उज्जयिनी और मध्य-मिका आदि विश्रुत विश्वविद्यालय, जिनमें भारत के बाहर से हजारों छात्र विद्या ग्रहण करने आया करते थे, क्यों मिट्टी में मिला दिए गए ? उस असहिष्णुता के कारण ही तो । सत्ता के मद में उचित-अनुचित का विवेक भी कहाँ रहता है ?

सत्ताधीश सोचता है कि मेरे बाद भी मेरा यश अक्षुण्ण रहे, इस-लिए वह तरह-तरह से स्मारक, मकबरे और मीनारें खड़ा करता है, अपनी प्रशस्ति में काव्य-ग्रन्थ लिखवाता है और इतिहास को अपने ढंग से भावी पीढ़ियों तक पहुँचाने के लिए कालपात्र जमीन में गड़वाता है । पर इतिहास तो बड़ा निर्मम है । सत्ताधीशों के जीवन-काल में ही कभी-

कभी इतिहास अपनी निर्ममता प्रकट कर देता है, नहीं तो ऐसे उदाहरणों की भी कमी नहीं हैं जब मरने के बाद कब्र में पढ़े शव के प्रति वह निर्ममता चरितार्थ होती है।

अंग्रेजों ने भारतीयों को बदनाम करने के लिए कालकोठरी का मनघड़न्त किस्सा गढ़ा था। कलकत्ते में उस 'ब्लैक होल' का स्मारक भी बना दिया गया था। अनेक दशकों तक भारत के स्कूलों में बच्चों को वह मनघड़न्त कहानी इतिहास की पुस्तकों में पढ़ाई जाती रही और भारतवासी अपनी उस तथाकथित हृदयहीनता पर मन ही मन लज्जित होते रहे। पर भूठ के तो पाँव नहीं होते। आखिर नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने सन ४२ में 'ब्लैक होल' के उस स्मारक के विरोध में सत्याग्रह किया। बंगबन्धु शेख मुजीब उस समय कलकत्ता विश्वविद्यालय के छात्र थे। वे भी फारवर्ड ब्लाक के उस सत्याग्रह में शामिल हुए। और अन्त में स्वयं अंग्रेजों ने ही उस मिथ्या कलंक को कलकत्ते से हटा दिया।

सत्ताधीश किसी भी असत्य को कुछ समय के लिए सत्य बना सकता है, पर अन्ततः इतिहास उस समग्र परिश्रम को व्यर्थ सिद्ध करके छोड़ता है। जो मर्जी के मुताबिक ढाला जा सके, वह सत्य नहीं होता। पूर्वाग्रह कभी विज्ञान का रूप नहीं ले सकता।

राजधानी में विशेष सुविधाप्राप्त द्वीप की तरह विद्यमान जवाहरलाल नेहरूविश्वविद्यालय में कुछ इतिहास की पुस्तकें तैयार की गईं, जो पूर्वाग्रह से युक्त थीं। उन पुस्तकों के लेखक सत्ता की ओर से सम्मानित हुए। छात्रों को अब तक वे पुस्तकें निर्द्वन्द्व भाव से पढ़ाई जाती रहीं। अब जनता पार्टी की सरकार ने उन पुस्तकों पर प्रतिबन्ध लगा दिया है, तो बुद्धिजीवियों में हलचल मच गई है। कुछ लोग कहने लगे हैं कि यह विचार-स्वातंत्र्य पर प्रहार है। पर विचार-स्वातंत्र्य के नाम पर तो कालपात्र का भी समर्थन किया जा सकता है। शायद सत्ताएँ सोचती हैं कि एक बार कालपात्र जमीन में गड़ गया तो बस शेषनाग के फण पर किल्ली गड़ गयी। ऐसी किल्ली पहले भी कितनी हीं बार गड़ चुकी है। पर वह सदा दिल्ली पड़ गई, तभी तो भारत की इस ऐतिहासिक राजधानी का नाम दिल्ली पड़ा। इतिहास सचमुच बड़ा निर्मम है। □

## गीता का राजमार्ग

विश्व के धार्मिक साहित्य में श्रीमद्भगवद्गीता को अनुपम स्थान प्राप्त है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में, मनुष्य-जीवन के लिए गीता से अधिक जागरूक प्रहरी शायद ही और कोई हो। गीता जीवन को एक ऐसे राजमार्ग की ओर निर्देश करती है जिसमें अन्तिम मंजिल तक यात्री को न तो कहीं छायादार और फलदार वृक्षों की कमी होगी और न कहीं चोर-लुटेरों का भय। यही इसकी लोकप्रियता का रहस्य है।

प्रत्येक मनुष्य के जीवन में ऐसे अवसर आते हैं जब वह चौराहे पर खड़ा होकर पूछता है—अब किधर जाऊँ।

किं कर्म किमकर्मेति कवयो प्यत्र मोहिताः।

—कर्म क्या है और अकर्म क्या है, इस विषय में ज्ञानी लोग भी दुविधा में पड़ जाते हैं। सामान्य जनों का तो कहना ही क्या।

किंकर्तव्य-विमूढ़ अवस्था में पड़े जीव का ही प्रतीक है अर्जुन। युद्ध में अपने सम्मुख गुरुजनों और सगे-सम्बन्धियों को देखकर उसकी विजिगीषा पर ग्रहण लग गया। आत्मगलाति के बवंडर ने उसके समस्त स्नायु-केन्द्र को झकझोर दिया। गीताकार ने इसे विषाद-योग का नाम दिया है। विषाद अहंकार का परिणाम है। अहंकार की यह चिन-गारी अर्जुन के मन में ऐसे रूप से भड़कती है कि वह कुल, जाति, समाज और संस्कृति सबका संहर्ता और त्राता अपने आपको समझने लगता है। युद्ध में अपने प्रियजनों की मृत्यु का भय उसके मन में ऐसी मोहासक्ति जगाता है कि उसे विजय-प्राप्ति के बाद के सारे सुख-भोग रक्त-रंजित लगने लगते हैं।

गुरुनहत्वा हि महानुभावान् ।  
 श्रेयोभोक्तुं भैक्ष्यमपीह लोके ।  
 हत्वार्थकामांस्तु गुरुनिहैव  
 भुंजीय भोगान रुधिरग्रदिग्धान् ॥

—हे कृष्ण ! इन महानुभाव गुरुजनों को मारने के बजाय मैं भीख माँगकर जीवन-यापन करना श्रेयकर समझता हूँ, क्योंकि इन्हें मारकर प्राप्त किए गए सुखोपभोग के साधन उन पूज्यजनों के खून से ही तो सने होंगे ।

वास्तव में यहाँ अर्जुन के सामने भारतीय जीवन-दर्शन का वही मूल शाश्वत प्रश्न उपस्थित है कि हम प्रेय को स्वीकार करें या श्रेय को ? भारतीय संस्कृति में यह प्रश्न इतना व्यापक है कि गाँव का अन-पढ़ किसान भी अपने जीवन के विभिन्न मोड़ों पर अपने आपसे उसी आस्था से वह प्रश्न पूछता है जिस आस्था से विभिन्न शास्त्रों में निष्णात व्यक्ति पूछता है । जब अहंकार और मोह आत्मा को अच्छादित कर लेते हैं तब व्यक्ति को सर्वत्र प्रेय ही प्रेय दीखता है, श्रेय नहीं । श्रीकृष्ण उस अहंकार की ओर इंगित करते हुए अर्जुन से कहते हैं—

यदहंकारमाश्रित्य न योत्स्य इति मन्यसे ।

मित्यैष व्यवसायस्त्\*\*\*

तू जिस अहंकार के वश में होकर यह कहता है कि मैं नहीं लड़ूँगा, वह तेरा निश्चय एकदम मिथ्या है । और फिर तत्व की बात कहते हैं—

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।

हत्वापि स इमान् लोकान् न हन्ति न निवध्यते ॥

—जिसके मन में अहंकार का भाव नहीं है और जिसकी बुद्धि मोह में लिप्त नहीं है, वह किसी को मारकर भी नहीं मारता और न ही वह बन्धन में आता है ।

महाभारत का युद्ध १८ दिन तक चला था । महाभारत के पर्वों की संख्या भी १८ है । इसी प्रकार गीता के भी ऋठारह अध्याय हैं । इस ऋठारह की संख्या का प्रतीकात्मक अर्थ क्या है, यह कहना कठिन

है। इन अध्यायों के अन्त में ‘इति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु’ कह कर उनकी समाप्ति की गई। अर्थात् गीता को उपनिषद् न कहकर ‘उपनिषदे’ कहा गया है और प्रत्येक अध्याय को किसी न किसी योग का नाम दिया गया है—जैसे विषादयोग, साँख्ययोग और कर्मयोग आदि।

इससे दो निष्कर्ष अनायास सामने आते हैं—एक तो यह कि गीता में उन सभी वैचारिक सम्प्रदायों का; जो दार्शनिकता की दृष्टि से उपनिषद् कोटि में पहुँच चुके थे, संकलन या सामंजस्य है; और दूसरे यह कि गीता का लक्ष्य निवृत्ति न होकर ‘प्रवृत्ति’ है, विश्राम न होकर ‘श्रम’ है, वियोग न होकर ‘योग’ है। तभी तो प्रथम अध्याय में जो अर्जुन गांडीव फेंक कर, विषाद-ग्रस्त होकर बैठ जाता है, वह अन्तिम अध्याय तक पहुँचते-पहुँचते प्रसन्न मन से युद्ध के लिए तैयार हो जाता है। यही जीवन का सच्चा वैदिक आदर्श है।

गीता को योग और योगी—दोनों शब्द बहुत प्रिय हैं। इसीलिए जहाँ श्रीकृष्ण यह कहते हैं—

#### योगी त्वात्मैव मे मतम्

—योगी को तो मैं अपनी आत्मा ही मानता हूँ, वहाँ अर्जुन को भी समझते हैं—

तपस्विभ्योधिको योगी ज्ञानिभ्योपि मतोधिकः ।

कर्मिश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुनः ॥

—योगी तपस्वियों से भी अधिक है, वह ज्ञानियों से भी बढ़कर है और कर्मशूरों से कहाँ आगे है। इसलिए हे अर्जुन ! तू भी योगी बन। जैसे वेदों ने श्रेष्ठतम् कर्म को यज्ञ नाम दिया है, वैसे ही गीता ने भी योग की अपनी ओर से विशेष व्याख्या की है—

#### योगः कर्मसु कौशलम्

—अर्थात् किसी भी काम में सर्वात्मना लीन होकर उसमें दक्षता प्राप्त करना ही योग है। और तो और, जब संन्यास-योग शब्द का प्रयोग हो तो वहाँ उसका अर्थ सर्वथा कर्म-निवृत्ति नहीं, प्रत्युत ‘संन्यास में

## १५८ :: ओ ! मेरे राजहंस

‘ही दक्षता’ समझना होगा । इस प्रकार कर्म-कौशल और श्रेष्ठतम कर्म जैसे समानार्थक प्रतीत होते हैं, वैसे ही यज्ञ और योग शब्द भी समानार्थक प्रतीत होते हैं । वास्तव में जो भी स्वार्थ-रहित परोपकार का काम है, वह यज्ञ है, और गीता की दृष्टि में फलासक्ति से शून्य निष्काम कर्म ही योग है ।

मनुष्य के जीवन की तीन मूल प्रवृत्तियाँ हैं—ज्ञान, भक्ति और कर्म । इसी त्रिकोण पर जीवन निर्भर है और ये तीनों कोण एक-दूसरे पर आश्रित हैं । यदि एक भी कोण चलायमान हो जाए तो त्रिकोण नहीं टिकेगा । किसी के भीतर ज्ञान की प्रवृत्ति प्रवल हो सकती है, किसी के भीतर कर्म की और किसी के भीतर भक्ति की । जहाँ इन तीनों प्रवृत्तियों का समन्वय हो जाता है, वहाँ स्थित-प्रज्ञ महापुरुष जन्म ले लेता है । उक्त तीनों प्रवृत्तियों के समन्वय के लिए जिस आत्मिक और कायिक साधन की आवश्यकता है, उसी का नाम योग है । ज्ञान, भक्ति और कर्म की त्रिवेणी इस योगरूपी जल के बिना रेगिस्तान की तरह सूखी है ।

उपनिषद कहते हैं—‘आत्मानं विद्धि’ सुकरात कहते हैं—‘नो दाइ-सैल्फ ।’ महात्मा बुद्ध कहते हैं—‘अप्प दीपो भव’—स्वयं अपने दीपक बनो । गीता भी यही कहती है—‘योगी भवार्जुन’—अर्जुन ! तू योगी बन, अर्थात् अपने आपको और अपनी शक्ति को पहचान । और हाँ, आत्मविजय के इस मार्ग में तू अकेला नहीं है, घट-घट-व्यापी अन्तर्यामी भगवान् तेरे साथ हैं । निष्काम होकर अपने कर्तव्य का पालन किए जा और फल भगवान् की इच्छा पर छोड़ दे ।

यही गीता का राजमार्ग है । इस राजमार्ग पर चलते हुए जहाँ कर्म-अकर्म की समस्या का स्वयं समाधान हो जाता है, वहाँ इस पथ पर कभी पराजय का प्रश्न भी पैदा नहीं होता । यह तो सतत विजय का मूलमंत्र है । श्रीकृष्ण कहते हैं—

तस्मात्त्वमुत्तिष्ठ यशो लभस्व  
जित्वा शत्रून् भुक्ष्व राज्यं समृद्धम् ।

ममैवैते निहताः पूर्वमेव  
निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ।

—हे अर्जुन ! तू उठ, यश लाभ कर न्याय के शत्रुओं पर विजय प्राप्त कर और समृद्ध राज्य का उपभोग कर । देखता नहीं, ये सब तो पहले ही मेरे मारे हुए पड़े हैं, तू तो केवल नितित्तमात्र बन जा, हे सव्य-साचिन् ।

## हिन्दी तो बनवासिनी !

गत वर्ष लगभग इन्हीं दिनों में मौरिशस में विश्व हिन्दी सम्मेलन हुआ था और उस सम्मेलन में एक प्रस्ताव पास करके यह माँग की गई थी कि हिन्दी को संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा मान्यता दी जाए । चीनी और अंग्रेजी के बाद इस समय संसार में हिन्दी भाषियों की ही संख्या अधिकतम है, इसलिए अन्तर्राष्ट्रीयता मान्यता प्राप्त होना उसका जन्मसिद्ध अधिकार होना चाहिए था, पर इसके लिए इससे पूर्व कभी प्रयत्न नहीं किया गया । पिछले दिनों अरब देशों के प्रयत्न से अरबी को संयुक्त राष्ट्रीय मंच पर स्थान मिल गया, यद्यपि अरबी बोलने वालों की संख्या हिन्दी भाषियों से बहुत कम है ।

इस समय हिन्दी केवल भारत में ही नहीं बोली जाती, वरन् मौरिशस, फिजी, गुयाना, सुरीनाम, पूर्वी अफ्रीका तथा दक्षिण अफ्रीका के उन प्रदेशों में जहाँ-जहाँ भारतवंशियों की संख्या काफी है । हिन्दी एक जीवन्त भाषा है । इस समय संसार के ६१ से अधिक विदेशी विश्व-विद्यालयों में हिन्दी पठन-पाठन की व्यवस्था है । यह भी एक सुखद आश्चर्य है कि हिन्दी को अन्तर्राष्ट्रीय मान्यता देने की माँग भारत से बाहर, मौरिशस में की गई । इसका एक अर्थ यह भी है कि हिन्दी के प्रति जितना उत्साह भारत के बाहर के भारतवंशियों में है, उतना कदाचित उसकी जन्मभूमि में नहीं । गत वर्ष मौरिशस में पारित प्रस्ताव का ही यह परिणाम है कि भारत के विदेश मंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी इस बार जब संयुक्त राष्ट्रीय प्रतिनिधि मंडल को लेकर अमरीका गए तो ४ अक्टूबर को संयुक्त राष्ट्रीय महासभा में हिन्दी में भाषण दिया । किसी भी अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर यह हिन्दी का

प्रथम भाषण था ।

हिन्दी प्रेमियों को उक्त समाचार से प्रसन्नता हो सकती है, पर स्वयं भारत में हिन्दी के प्रति वर्ग-विशेष का क्या रुख है, यह निम्न समाचार में पढ़िए—

देहरादून का एक विख्यात स्कूल है—सेट थामस स्कूल। इस स्कूल के आठवीं कक्षा के एक विद्यार्थी ने विद्यालय के परिसर में अपने किसी अन्य साथी से हिन्दी में बातचीत की। इस अपराध पर प्रधानाचार्य के आदेश से उस बालक की पिटाई हुई। इतना ही नहीं, इस बालक को चेतावनी दी गई कि यदि भविष्य में उसने कभी हिन्दी में बातचीत करने का प्रयत्न किया तो इसे स्कूल से निकाल दिया जाएगा। जब हिन्दी साहित्य समिति के कुछ उत्साही युवकों ने प्रधानाचार्य से इस घटना की सत्यता के बारे में पूछताछ की तो उन्होंने इसकी सत्यता स्वीकार की और यह तकँ दिया कि जब अभिभावण भारी रकम खर्च करके अपने बच्चों को अंग्रेजी स्कूल में इसीलिए भेजते हैं कि उनके बच्चे अंग्रेजी में निपुणता प्राप्त करें, तो विद्यालय के नियमानुसार बालकों को अंग्रेजी के सिवाय किसी अन्य भाषा में बातचीत करने की छूट नहीं दी जा सकती ।

एंग्लो-इंडियन वर्ग के प्रमुख और फैक एन्थनी की दृष्टि में उक्त समाचार आया है या नहीं, पता नहीं, पर वे वर्तमान सरकार के पीछे लगुडहस्त होकर पड़ गए हैं और कहते हैं कि अंग्रेजी हमारी मातृभाषा है, वह विदेशी भाषा नहीं है। जैसे अन्य क्षेत्रों में अल्पसंख्यकों को संरक्षण देने को सरकार की नीति है, वैसे ही सरकार को अंग्रेजी को संरक्षण देना चाहिए, अंग्रेजी माध्यम के स्कूलों को सब प्रकार की सुविधाएँ देनी चाहिए और लोकतांत्रिक क्रांति के बाद जनता के रुख में आए परिवर्तन के परिणामस्वरूप इन स्कूलों को जन-आक्रोश का भाजन बनने से बचाना चाहिए ।

प्रश्नों का प्रश्न यही है कि इस समय संरक्षण की जरूरत अंग्रेजी को है, या हिन्दी को ?

हिन्दी को संरक्षण ? उसे तो कभी राजाश्रय मिला ही नहीं ॥

वह महलों की नहीं, गरीबों की झोपड़ियों की भाषा है। वह होटलों की नहीं, मन्दिरों और आश्रमों की भाषा है। वह प्रोफेसरों की नहीं, सन्तों की भाषा है। वह हवाई जहाज में यात्रा करने वाले और चाँदी के चम्मच मुँह में लेकर पैदा होने वाले धनपतियों की भाषा नहीं, वह तो गंगोत्री का जल लेकर रामेश्वर तक पद्यात्रा करने वाले तीर्थ यात्रियों की भाषा है। वह राज नेताओं को नहीं, जनता-जनार्दन की भाषा है। वह शोषकों की नहीं, शोषितों की भाषा है। वह सत्ता की नहीं, सेवा की भाषा है। वह मूँछें ऐंठ कर रवि दिखाने की नहीं, विनश्तापूर्वक बोट माँगने की भाषा है। वह सचमुच ही जगन्नाथ का रथ है, जिसे जनता खींचती है, राजा नहीं।

और अंग्रेजी ? वह सदा संरक्षण के बल पर जीवित रही। जब तक अंग्रेज रहे; वह सदा निर्बध संरक्षण पाती रही और जब अंग्रेज चले गये, तो उनके मानस-पुत्रों से संरक्षण पाती रही। वह तो विना संरक्षण के एक कदम भी नहीं चल सकती। फ्रेंक एन्थनी साहब कहते हैं कि अंग्रेजी अलास्का के तट से अफ्रीका के घने जंगलों तक बोली जाती है। इससे इन्कार कौन करता है ? पर क्या इसीलिए उसे संरक्षण की आवश्यकता है ?

यदि इसीलिए उसे संरक्षण की आवश्यकता हो तो ब्रिटिश साम्राज्य भी उतना विस्तृत था कि उसमें कभी सूर्यास्त नहीं होता था, भारत से उसे हटाने की क्या आवश्यकता थी। क्या एन्थनी साहब मन ही मन उसी साम्राज्य को वापिस लाने का स्वप्न तो नहीं देखते। यदि उनके मन के किसी कोने में इस प्रकार का मोह हो तो उनकी कुश्ती मोरारजी भाई से नहीं, सीधे गाँधी बाबा से होगी। क्या डेढ़ पसली के उस लँगोटीधारी से एन्थनी साहब कुश्ती लड़ेगे जिसने ब्रिटिश साम्राज्य के सब पहलवानों को एकमुश्त धराशायी कर दिया ? हाँ वही गाँधी, जो अंग्रेजों का दोस्त था, पर अंग्रेजी का दुश्मन था। वही गाँधी, जो किसी हद तक अंग्रेजों की हुकूमत को वर्दाशत करने को तैयार था, पर अंग्रेजी की हुकूमत को नहीं। अंग्रेजी के हटाने के लिए बड़ी से बड़ी कुर्बानी देने की घोषणा की थी उस

गांधी ने । उसी गांधी ने १५ अगस्त सन् १९४७ को विश्व के नाम अपने संदेश में कहा था : ‘दुनिया से कह दो, गांधी अंग्रेजी नहीं जानता ।’

गांधी इतना हिन्दी-समर्थक और अंग्रेजी-विरोधी क्यों था ? क्योंकि वह जानता था कि हिन्दी राष्ट्र की अस्मिता की प्रतीक है । कोई राष्ट्र अपनी मातृभाषा को छोड़कर राष्ट्र नहीं कहला सकता । मातृभाषा की रक्षा देश की सीमाओं की रक्षा से भी जरूरी है, क्योंकि विदेशी आक्रमणों को रोकने में नदियों और पर्वतों और सेनाओं की अपेक्षा वही अधिक समर्थ है । क्योंकि वह जानता था कि जब-जब देश पर वाहरी आक्रमण हुए और राष्ट्र की रक्षा की जिम्मेदारी सँम्भालने वाली तलवार की धार कुठित हो गई, तब-तब देश की सांस्कृतिक एकता की पताका को सदा ऊँचा रखने वाली हिन्दी ने और उसकी सगी बहनों—अन्य भारतीय भाषाओं ने—देश की मृतप्राय अत्मा में चेतना संचार किया था और भारत को पुनः विजिगीषा के पथ पर आरूढ़ किया था ।

जिस भाषा में भारत की समन्वयवादी संस्कृति समहित है, जिसके माध्यम से देश के सभी राष्ट्रीय आन्दोलन संपन्न हुए, जिस भाषा में पृथ्वीराज और चन्द्रवरदाई से लेकर जनता सरकार तक भारतीय जनमानस की भावनाएँ अभिव्यक्त हुई हैं, उस हिन्दी की शक्ति को पहचान कर ही, १४ सितम्बर १९४७ के दिन भारतीय संविधान सभा ने उसे राष्ट्रभाषा के पद से गौरवान्वित किया था ।

पर जिस दिन राम के राज्याभिषेक की तैयारी थी, उस दिन मंथरा के कुचक से राम को वनवास मिल गया । रावण का वध करके, चौदह वर्ष के वनवास के बाद राम अयोध्या लौट आए । उन्हें राजगद्वी मिली । पर हृतभाग्य सीता ! किसी धोबी के मिथ्या अपवाद के वशीभूत होकर मर्यादापुरुषोत्तम राम ने भगवती सीता को पुनः वनवासिनी बना दिया ।

सीता आज ३० वर्ष बाद भी वनवासिनी ही है ।



## आत्मवंचना का अभियान

एक आस्तिक दुकानदार था। रोज शाम को दुकान बन्द करके मन्दिर जाना नहीं भूलता था। गर्भी-सर्दी-बरसात आदि कोई भी मौसम हो, मन्दिर जाकर देवता की आराधना में कभी कोताही नहीं। परन्तु मन्दिर की ओर जाने से पहले वह दुकान में ताला लगाना कभी नहीं भूलता था। इतना ही नहीं, कुछ कदम जाकर फिर लौटकर आता और ताले को दुबारा हिलाकर देखता कि ठीक ढंग से बन्द है या नहीं। एक दिन एक पड़ोसी ने पूछ लिया कि आप लौटकर दुबारा ताले को हिलाकर क्यों देखते हैं। दुकानदार ने कहा : ‘जाते-जाते मुझे सन्देह हो जाता है कि पता नहीं, ताला ठीक से लगा है या नहीं, इसीलिए लौट कर देखता हूँ।’

पड़ोसी ने पूछा : ‘जब तुम सौ-दो-सौ कदम चले जाते हो, तब सन्देह नहीं होता ?’ दुकानदार ने कहा : ‘होता है, पर तब लौटने की हिम्मत नहीं होती—पता नहीं लोग क्या कहेंगे।’

पड़ोसी ने कहा : ‘फिर तो तुमको मन्दिर में भगवान के सामने खड़े होने पर भी ताला ही दिखता होगा।’

दुकानदार ने कहा : ‘अरे, तुम्हें कैसे पता चल गया। हैरानी की बात है। सचमुच मुझे मन्दिर में भी खड़े-खड़े ताला ही दिखता है। किसी तरह पूजा करके जल्दी-जल्दी भागता हूँ और लौटते हुए घर जाने से पहले एक बार फिर दुकान का ताला देखता हूँ।’

इस व्यक्ति को स्वप्न में भी ताला ही दिखता होगा। लोग उसे कितना ही ईश्वर-भक्त क्यों न समझें, पर असल में तो तालाभक्त ही है। सोते-जागते, उठते-बैठते उसे सदा ताले की ही चिन्ता रहती है।

कहीं भी, किसी भी परिस्थिति में क्यों न हो, उसका ध्यान सदा अपनी तिजोरी की ओर रहता है। प्रायः बड़े से बड़े अध्यात्मवादी के मन में भी भौतिकवाद इसी प्रकार कुण्डली मारे बैठा रहता है और अध्यात्मवादी व्यक्ति है कि भौतिकवाद को कोसने से बाज नहीं आता।

असल में हमारा चित्त तो है भौतिकवादी, पर हम इस बात को मानने से इंकार करते हैं, क्योंकि हम अपनी भौतिक जिंदगी की माँग को पूरा करने में असमर्थ रहे। अपनी असमर्थता को स्वीकार करने में हमें लज्जा आती है।

जो आदमी भूखा है, उसे भगवान के सामने खड़े होने पर भी रोटी ही दिखाई दे, तो इसमें न कोई आश्चर्य है, न बुराई। जब जिंदगी की जरूरी चीजें किसी के पास न हो, तो उन बातों की अधिकाधिक चर्चा करना जो जिंदगी के लिए गैर जरूरी है, एक प्रकार से आत्मवंचना ही है। आखिर हम भगवान के सामने जाकर भी क्या माँगते हैं—यही न कि मेरे लड़के की नौकरी लगवा दो, मेरी लड़की की शादी करवा दो, मेरी पत्नी की बीमारी ठीक कर दो। हम बनते हैं अध्यात्मवादी पर परमात्मा से माँग सदा वही करते हैं जो विशुद्ध भौतिकवाद है। यह आत्मवंचना और वेशर्मी दोनों की हृद है।

जो काम हमें स्वयं कर लेना चाहिए, वह हम भगवान से माँगते हैं। जो हम नहीं कर सके, वह भगवान क्यों करेगा। जिस काम को करने की पूरी क्षमता देकर उसने हमें पैदा किया है, अब उसे करने की भगवान की कोई जिम्मेदारी नहीं है। रोटी, कपड़ा और मकान जैसी बुनियादी जरूरतें हमें को पूरी करनी हैं, इसके लिए नाहक विचारे भगवान को क्यों परेशान करें। जो काम हम कर सकते हैं उसे करने के लिए किसी और से कहना मर्दानगी नहीं है।

इधर पिछ्ले पचास वर्षों में ज्ञान-विज्ञान ने जितनी तरक्की की है, उसके कारण यह नितांत सम्भव होना चाहिए था कि इस धरती के निवासी मानव की जिंदगी की बुनियादी जरूरतें पूरी हो जातीं। पर मानव जमीन पर रहने योग्य नहीं हो पाया और विज्ञान ने उन्हें चाँद घर पहुँचा दिया। इसीलिए जिस दिन पहली बार आदमी ने पृथ्वी की

सीमा का अतिक्रमण किया था उसी दिन वर्टेंड रसेल ने कहा था : 'इस समाचार से मैं बहुत चिन्तित हो उठा हूँ, क्योंकि इस पृथ्वी पर तो आदमी की बेवकूफियों का अभी अन्त हुआ नहीं था, अब वह अपनी बेवकूफियों को चाँद पर भी ले जाने की कोशिश कर रहा है। मुझे डर यही है कि यही सब वीमारियाँ अन्य ग्रहों में भी न फैल जाएँ।'

भूख और गरीबी दोनों पुराने साथी हैं। गरीब देश ही भूखमरी के शिकार हैं। पूँजीपति देश के तो पशुओं को भी अनाज की कमी नहीं, और गरीब देशों के मानव अनाज के दाने-दाने को मोहताज। आश्चर्य की बात यही है कि इस समय गरीब देशों की आवादी तीन-चौथाई है और पूँजीपति देशों की आवादी एक चौथाई। इसी तथ्य को पकड़ कर अर्थशास्त्रियों ने निष्कर्ष रूप से घोषित कर दिया कि तीसरी दुनिया की गरीबी का मुख्य कारण है उसकी इतनी बढ़ी हुई आवादी, औद्योगिक पिछ़ड़ापन और खेती के लिए पुरानी पद्धतियों का प्रयोग।

बस फिर क्या था—हरित क्रान्ति का नारा चल पड़ा और कहा गया कि जब तक खेती का यंत्रीकरण तथा रासायनिक खाद और कीटनाशक औषधियों का बड़े पैमाने पर प्रयोग नहीं होगा, तब तक पैदावार नहीं बढ़ सकती। विकसित पूँजीवादी देशों ने पैदावार बढ़ाने के इन साधनों का निर्यात करने का ठेका लिया। इससे उनको दुहरा लाभ हुआ। खेती के खर्चों यंत्रों, रासायनिक खादों और कीटनाशक दवाओं के उन्होंने मुँहमांगे दाम लिए और गरीब देशों में पैदा होने वाली नकदी फसलों को कच्चे माल के रूप में सस्ता खरीद लिया। परिणाम यह हुआ कि जितनी पैदावार बढ़ी वह न तो गरीब जनता की भूख मिटा पाई, और न ही उसके जीवन-स्तर में कुछ सुधार हो पाया। हाँ, इतना जरूर हुआ कि कुछ किसान नव-धनाद्यों की कोटि में आ गए और जो पहले से ही धनाद्य थे, वे और धनाद्य बन गए।

विकसित देशों के इस अभियान के एक-दो उदाहरण देना पर्याप्त होगा :

नावे की सहायता से केरल के मछली पकड़ने के पारम्परिक कारो-बार का यंत्रीकरण हुआ। यंत्रीकरण का परिणाम यह हुआ कि मछली-

पकड़ने वाले और वेतनभोगी मजदूर बन गए और मछलियों के भाव इतने बढ़ गए कि स्थानीय ग्राहकों की पहुँच से बाहर हो गयी। और दो ही उपाय शेष रहे—मछली की कीमत घटाई जाए या मंहगी मछली के ग्राहक तलाश किए जाएँ। दूसरा उपाय चुन लिया गया। अर्थात् मछली के निर्यात की व्यवस्था हो गई और केरलवासी उसके लिए तरसते रहे गए।

अफ्रीकी देश सेनेगल अपने यहाँ से मूँगफली का निर्यात करके अच्छी विदेशी मुद्रा अर्जित कर लेता था। उसने सोचा कि खेती का यंत्रीकरण और रासायनिक खाद के सहारे से मूँगफली का उत्पादन बढ़ाया जाए और उसका निर्यात करके विदेशी मुद्रा और अधिक मात्रा में अर्जित की जाए। उसने फ्रांस से सहायता ली। सेनेगल में विदेशी उर्वरक, विदेशी तकनीक की खपत तो बढ़ गई, पर इससे उत्पादन बढ़ने के बजाय और घट गया। ऊपर से किस्मत की मार यह कि अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में मूँगफली के भाव गिर गए। फिर भी सेनेगल तथा अन्य अफ्रीकी देशों से विदेशी सहयोग का मोह नहीं छूटता और इस सहयोग को प्राप्त करने के लिए उन्हें मूल्यवान विदेशी मुद्रा खर्च करनी पड़ती है।

असलियत यह है कि गरीब देशों में एक विशिष्ट वर्ग है जो अपनी शिक्षा-दीक्षा, भाषा-भूषा संस्कार और निजी स्वार्थ के कारण अमीर देशों के नीति-निधारिक वर्ग से जुड़ा हुआ है। यह वर्ग आसानी से भारत में भी पहचाना जा सकता है। वे रोजगारी मिटाने के लिए विदेशी पूँजी की सहायता से बड़ी मशीनों का आयात कर औद्योगीकरण का स्वप्न देखने वाले, विदेशी उर्वरक-ट्रैक्टर-कीटनाशक से खेती की पैदावार बढ़ाने वाले और अपने देश के लोगों की जरूरतों की उपेक्षा करके उपभोक्ता वस्तुओं का निर्यात करके विदेशी मुद्रा कमाने की वकालत जारी करने वाले इसी श्रेणी में आते हैं। जब तक विदेशों पर वैचारिक निर्भरता की यह प्रवृत्ति विद्यमान है, तब तक आत्म-निर्भरता का प्रत्येक अभियान केवल आत्मवंचना बनकर रह जाएगा।

## आदमी को देखकर शैतान आधा रह गया

जिन दिनों देश में लोकसभा के चुनाव चल रहे थे, उन दिनों की बात है। दक्षिण भारत के एक गाँव में एक सामान्य-सी घटना घट गई। उस घटना की तरफ शायद समाचार-पत्रों ने भी ध्यान नहीं दिया।

तिरुपुर नामक गाँव में स्त्री-पुरुष अपना बोट डालने की प्रतीक्षा में खड़े थे। बोट डालने का समय समाप्त होने में केवल पंद्रह मिनट शेष थे। पंक्ति काफी लम्बी थी। इसलिए सब चिंतित थे, क्योंकि कोई भी अपने मताधिकार का प्रयोग करने से बंचित नहीं होना चाहता था। अचानक खबर आई कि दिन भर पड़ीस के जिस नल में पानी नहीं आया था उसमें पानी आना शुरू हो गया है। फिर क्या था—पुरुष तो वहीं खड़े रहे, पर स्त्रियों में भगदड़ मच गई। वे इस पंक्ति छोड़कर पानी भरने वाली पंक्ति में अपना नंबर लगाने के लिए दौड़ पड़ीं। लोकसभा के चुनाव पाँच या छह साल में केवल एक बार आते हैं—और फिर इस बार के चुनावों में तो देश का वर्तमान और भविष्य दोनों दाँव पर लगे थे—फिर भी उन महिलाओं के लिए मतपेटियाँ भरने के बजाय नल से अपने घड़े भरना ज्यादा जरूरी था।

यह घटना इस बात की दृश्योत्तक है कि आम जनता को राजनीति से कितना वास्ता है। जो लोग स्वयं सत्ता में आने का कभी स्वप्न भी नहीं देख सकते और जिन्हें विधाता ने ‘चेरि छाँड़ि नहिं होउब रानी’ की नियति देकर भेजा है, वे अपने हाथ में आए नृप-निर्माता होने का सौभाग्य भी कितनी आसानी से छोड़ सकते हैं। उनके लिए अपने जीवन की दैनिक आवश्यकताओं का समस्त राजनीतिक नेताओं से और राजनीतिक वादों से कहीं अधिक महत्त्व है। क्या ये सब राज-

नीतिक वाद, जिनको लेकर राजनीतिज्ञ लोग अहर्निश एक दूसरे का मस्तक भंजन करने को तैयार रहते हैं, भरे-पेट बुद्धिजीवियों के वाणी-विलास मात्र हैं ?

वैसे भी पुरुष जैसी राजनीतिक प्राणी महिला नहीं हैं। यह अलग बात है कि जब कोई महिला 'राजनीति' करने पर आती है तो वह सब पुरुषों को भी पछाड़ देती है। इसका भी शायद कारण यही है कि वह अधिक व्यवहार-कुशल होती है और 'किचन पालिटिक्स' में उसे मात नहीं दी जा सकती। नीतिकार तो केवल यह कहकर रह गए—

न गृहं गृहमित्याहुः गृहिणी गृहमुच्यते ।

—घर-घर नहीं होता, घरनी (गृहिणी) से ही घर बनता है। पर गृहिणी ने पालने में वच्चे को भुलाते-भुलाते पुरुषों की दुनियाँ को भुला डालने की जो कुशलता अनायास हासिल कर ली है, उसका मुकाबला नहीं है। उसके लिए अपना घर ही 'इये वेदिः भुवनस्य नाभिः' है, वही विश्व का केन्द्र है। घर की उपेक्षा करके वह राजनीति को नहीं अपना सकती। घर पहले, वाहर पीछे ।

महान दार्शनिक सुकरात की पत्नी इसीलिए उससे असंतुष्ट रहती थी कि सुकरात को यूनान की जनता के नैतिक उत्थान की जितनी चिंता थी, उतनी घर की नहीं। कार्लमार्क्स की पत्नी भी अपने पति से इसीलिए अप्रसन्न रही, क्योंकि वह सारे संसार के मजदूरों की आर्थिक समस्या हल करने के शास्त्रीय विवेचन में दिन-रात जुटे रहे, और उन्होंने घर की आर्थिक समस्या हल करने की चिंता नहीं की। जब ताल्सताय ने बौद्धिक श्रम की अपेक्षा शारीरिक श्रम को अधिक महत्वपूर्ण मान कर साहित्य-रचना छोड़ दी और पदत्राण-निर्माण की और ध्यान दिया तो उनकी पत्नी विक्षिप्त-प्राय हो गई और अपने पति की इस बेवकूफी पर गुस्से से तिलमिला उठी। मजेदार बात यह कि ताल्सताय की लिखी पुस्तकों को हरेक खरीदने को तैयार, पर उसके बनाए जातों की ओर कोई आँख उठाकर देखने को भी तैयार नहीं ।

सोफोक्लीज का कहना है—

नारी देखने की वस्तु है, सुनने की नहीं ।

पर विक्टर ह्यूगो का कहना है—

मनुष्य की दृष्टि केवल दृष्टि होती है

और नारी की दिव्य-दृष्टि होती है ।

शायद नारी की यह दिव्य दृष्टि ही है जिसके कारण वह पुरुष की अपेक्षा राजनीति की सीमाओं को अधिक अच्छी तरह पहचानती है । वह जानती है कि मनुष्य के बुनियादी ढाँचे में परिवर्तन की शक्ति राजनीति में नहीं है । भले ही मानवाधिकारों की और सामाजिक व्यवस्थाओं की रक्षा के लिए राजनैतिक संगठनों की आवश्यकता हो, पर कोई भी प्रशासन-तंत्र और आर्थिक प्रणाली मानव को पूर्णतः संतुष्ट नहीं कर सकती । इसका कारण यह नहीं है कि अमुक विधि-व्यवस्था, प्रशासन-तंत्र या आर्थिक प्रणाली में कोई दोष है, बल्कि यह कि मानवीय स्वभाव में ही कुछ कमियाँ हैं ।

उदाहरण के लिए हम भ्रष्टाचार या भाई-भतीजावाद या गुटबाद को ले सकते हैं । किसी राजनैतिक दल में इनकी मात्रा अधिक और किसी में कम हो सकती है, पर ये मानव स्वभाव की कमजोरियाँ हैं । मुख्य बात यह है कि समाज और सत्ता के उच्च पदस्थ लोग इन कमजोरियों को अपनी ओर से प्रोत्साहन न दें । पर अक्सर होता यह है कि जब अपना अवसर आता है तो इन्हीं सब दुर्बलताओं को प्रश्रय देते हुए भी अपने को पाक-साफ और दूसरों को नापाक सिद्ध करने का प्रयत्न किया जाता है । जो अपनी गलती को गलती मान लेता है, उसके सुधार की आशा की जा सकती है, पर जो गलती को गलती ही न माने, उसका क्या इलाज ? गलती करना मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है, पर उसे दुहराना पशुत्व है । शायर का कहना है—

फिर उस शाने-करीभी के हौसले देखो ।

गुनहगार यह कह दे कि गुनहगार हूँ मैं ॥

एक वृद्ध गुरु था । वह युवकों को जागरूकता की शिक्षा देता था । उसने एक युवक को ऊँचे से ऊँचे वृक्ष पर चढ़ने का आदेश दिया । वह युवक वृक्ष पर चढ़ना नहीं जानता था । पर गुरु के आदेश से धीरे-धीरे चढ़ने का प्रयत्न किया तो चढ़ गया और वृक्ष के सबसे ऊँचे

शिखर पर पहुँच गया । उसके बाद उसने नीचे उतरना शुरू किया । इस बीच वृद्ध गुरु चुपचाप नीचे बैठा रहा । जब वह युवक जमीन से कोई पन्द्रह फुट ऊपर रह गया तो वृद्ध अचानक उठा और जोर से बोला—‘वेटा ! संभलकर उतरना ।’ युवक बहुत हैरान हुआ । जब वह वृक्ष की सबसे ऊँची शाखा पर पहुँच गया था, तब तो गुरु ने संभलने की बात नहीं कही, और अब जब इतना उतर आया, जमीन पास आ गई, तब यह चिल्लाकर संभलने की बात कह रहा है । जब मैं खतरे में था, तब तो चुपचाप आँखें बंद किए नीचे बैठा रहा और अब जब खतरा नहीं रहा, तो सावधान कर रहा है । यह पहेली समझ में नहीं आई । बूढ़ा खूब हँसा और बोला—‘वेटा !’ जब कोई खतरे में होता है, तब वह स्वयं सावधान और जागरूक रहता है । उस वक्त उसे चेताने की जरूरत नहीं । असली खतरा तभी शुरू होता है जब आदमी अपने को खतरे से बाहर समझता है । मैं बूढ़ा हो गया हूँ, लेकिन मैंने आज तक किसी को खतरे की चोटियों से गिरते नहीं देखा । गिरते तो लोगों को मैंने वहीं देखा है जहाँ कोई खतरा नजर नहीं आता । तुम इसे पहेली कहते हो ? नहीं, बेटे नहीं ! यही जिन्दगी है ।’

महिला और राजनीति से होते-होते बात आदमी की कमजोरियों तक पहुँची तो पाकिस्तानी शायर सरूर की ये पंक्तियाँ याद आ गईं ।

नाप कर देखा तो कद में कुछ दराजी आ गई ।

तौलकर देखा तो हर इन्सान आधा रह गया ॥

वह समझता था कि मैं भी अशरफ-उल-मख्लूक हूँ

आदमी को देखकर शैतान आधा रह गया ॥



## गांधी शरबत नहीं, प्रखर पावक-प्रवाह था

योगिराज श्रीकृष्ण ने अपना जन्म और अपना कर्म—दोनों को दिव्य कहा है: 'जन्म कर्म च मे दिव्यम्।' इसी दिव्यता का आभास देने के लिए कुछ कवियों ने भी महात्मा गांधी की योगेश्वर कृष्ण से तुलना की है। दोनों ही 'मोहन' थे, दोनों ही चक्रधारी थे (चर्खा और सुदर्शन चक्र), दोनों ही अशारणशरण थे, दोनों का ही लक्ष्य जनता जनादेन था। एक 'हरि' थे और दूसरे अपने आपको हरिजनों का सेवक कहने में गर्व अनुभव करते थे। स्वर्गीय राष्ट्रकवि श्री रामधारी सिंह दिनकर ने एक और भी समानता का उल्लेख किया है—

वापू ! तू कलि का कृष्ण विकल,  
आया आँखों में नीर लिए ।  
थी लाज द्रौपदी की जाती  
केशव-सा दौड़ा चीर लिए ॥

महात्मा गांधी के राम और कृष्ण से तुलना करने में एक और जहाँ उन्हें अवतार-पुरुष सिद्ध करने का सद्भाव है, वहाँ दूसरी ओर यह भाव भी प्रच्छन्न रूप से छिपा है कि उन्होंने जो कुछ किया वह इसलिए कि वे अवतार थे, उनमें ईश्वरी शक्ति विशेष रूप से अवतरित हुई थी, हम समान्य मनुष्य तो अपने अवतारों की केवल पूजा ही कर सकते हैं, उनके बताए मार्ग पर चलना हमारे लिए सम्भव नहीं। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक आइनस्टीन ने गांधीजी के परलोक-प्रयाण के पश्चात अपनी भाव-भीनी श्रद्धांजलि व्यक्त करते हुए कहा था कि "आने वाली पीढ़ियाँ

मुश्किल से ही विश्वास करेंगी कि कभी गांधी जैसा हाड़-माँस का पुतला इसी घरती पर विचरण करता था ।”

गांधी के आभामण्डल के साथ दिव्यता या चमत्कार का कितना ही घटाटोप क्यों न उपस्थित कर दिया जाए, पर उसे-बायबीय आदर्श-वादिता के ऐसे अजेय शिखर के रूप में चित्रित किया जाए कि उस पर कभी कोई चढ़ ही न सके, तो यह सरासर अन्याय होगा । गांधी यदि केवल आदर्श है, व्यवहार नहीं है, तो यह गांधी के अस्तित्व का ही अपलाप है ।

गांधी के अनोखे जीवन-दर्शन तथा रहस्यमय कर्मयोग से पराभूत होकर कविवर बच्चन ने लिखा है—

भारत का गांधी  
व्यक्त नहीं तब तक होगा  
भारती नहीं जब तक  
देती गांधी अपना,  
जब वाणी का  
मेधावी कोई उतरेगा  
तब उतरेगा  
पृथ्वी पर वाणी का सपना ॥

नहीं, नहीं, गांधी को स्वप्न मत बनाओ । उसे यथार्थ ही रहने दो !

पर मानव को स्वप्न बनने में जितना आनंद आता है, उतना यथार्थ-जीवी बनने में नहीं । शायद इसलिए गांधी के नाम के साथ ‘वाद’ शब्द जोड़कर उसे इस प्रकार विवाद का विषय बना दिया है कि आधुनिक प्रगतिवादी उससे यह कहकर आसानी से पीछा छुड़ा लेना चाहते हैं : जेट युग से लौटकर बैलगाड़ी के युग में नहीं जाया जा सकता । अर्थात् गांधी पुराना पड़ गया है, वह इस युग की समस्याओं को हल नहीं कर सकता । यहाँ फिर वही बात दुहरानी पड़ेगी कि यदि गांधी पुराना पड़ गया है तो जनता पार्टी को अपना जन्म पंजीकृत करवाने के लिए राजघाट में उसकी समाधि की साक्षी क्यों लेनी पड़ी ? गांधी बासी पड़ गया है तो आपातकाल की भीषण अंधियारी रात को जिसे विनोद भावे ने भी ‘अनु-

'शासन पर्व' का नामदेकर अपना आशीर्वाद दिया था, समाप्त करने के लिए सूर्य का प्रकाश कहाँ से आया ? अन्याय और अत्याचार के आगे खम ठोक कर खड़े होने की ताकत किसने दी ? सत्य के प्रति आग्रह प्रदर्शित करने वाला आत्मबल किधर से आया ? और आज भी यदि गांधी को बीच में से निकाल दें तो जनता पार्टी कहाँ है—वह तो केवल 'पंच का पुतला' है। और पंच तत्व का पुतला तो अवश्य ही मरणधर्म होता है। पाँचों तत्व अलग-अलग हुए कि सारा खेल खत्म ! उनको जोड़ने वाला तत्व केवल एक है और उसका नाम है—गांधी।

गांधी की जीवन पद्धति ही उसका चमत्कार था। और उसकी जीवन-पद्धति क्या थी ?

जब विहार के चम्पारन जिले में निलहे गोरे जमींदार गरीब किसानों पर भीषण अत्याचार कर रहे थे तब स्थिति की जांच के लिए गांधीजी वहाँ पहुँचे। इससे गोरे जमींदार एकदम गुस्से से भर उठे और गांधी को सबक सिखाने का उपाय सोचने लगे। किसानों को भी इसकी भनक लग गई। एक किसान ने गांधीजी के पास आकर खबर दी कि अमुक अंग्रेज आपको मारने की योजना बना रहा है इसलिए आप उससे सावधान रहें। गांधीजी ने बात सुन ली और सचमुच सावधान हो गए। पर यह सावधानी कैसी थी ! अगले दिन ही गांधीजी उस अंग्रेज के बंगले पर स्वयं उपस्थित हो गए और जाकर कहा—'मैं गांधी हूँ। मैंने सुना है कि आप मेरी हत्या करना चाहते हैं। आपको कष्ट न हो, इसलिए मैं स्वयं ही आपके पास चला आया हूँ। अब आप शौक से मेरी हत्या कर सकते हैं।'

विना ऐसी निर्भीकता के सत्य के प्रति आग्रह का कोई अर्थ नहीं होता। तभी तो वह अपने समय के सबसे बड़े और कभी सूर्य अस्त न होने का विरुद संभाले ब्रिटिश साम्राज्य की चूलें हिला सकें।

गांधी का जीवन-दर्शन क्या था, इसी का एक और उदाहरण है। जब गांधीजी द्वितीय गोलमेज कांफेन्स में शामिल होने के लिए इंगलैण्ड गए तो वहाँ के एक अंग्रेजी अखबार में उनकी उदारता की प्रशंसा करते हुए यह छपा : 'जब प्रिन्स आफ वेल्स भारत गए थे तब गांधी

ने उन्हें सादर दण्डवत् नमस्कार किया था।' जिस संवाददाता ने यह समाचार दिया था उसे बुलाकर गांधीजी ने कहा—'मैं भारत के गरीब से गरीब भंगी अछूत के सामने न केवल घुटने टेक कर नमस्कार कर सकता हूँ, बल्कि मैं उसकी चरण-रज भी ले सकता हूँ, क्योंकि उन्हें पद-दलित करने में मेरा और मेरे पूर्वजों का हाथ रहा है। पर मैं प्रिन्स आफ वेल्स तो दूर, स्वयं विटिश सम्राट को भी कभी दण्डवत नहीं करूँगा, क्योंकि एक महान उद्धण सत्ता का प्रतिनिधि है। एक हाथी भले ही मुझे कुचल दे, मैं डरकर उसके सामने सिर नहीं झुकाऊँगा। परन्तु अनजाने में यदि एक चींटी पर भी पैर पड़ जाए तो मैं उसको प्रणाम करूँगा।'

गांधी 'पर उपदेस कुशल बहुतेरे' मैं विश्वास नहीं करता। वह तो मन-वचन-कर्म की एकता में विश्वास करता है। पर आज के बुद्धि-जीवीयों को इस बात से नफरत है। उस 'अधनंगे फकीर' की सारी ताकत इसी बात में है और इसीलिए वह लाखों-करोड़ों का नेतृत्व कर सका, क्योंकि उसकी कथनी और करनी में अन्तर नहीं था। उसका कहना था—राजा और किसान अमीर और गरीब पूंजीपति और श्रमिक सब को समानता के स्तर तक लाने के लिए हमें यह दार्शनिक बहस नहीं करनी कि जब तक समाजवाद नहीं आता तब तक यह समानता स्थापित हो सकती है या नहीं? हम भाषण करते हैं, राजनीतिक दलों का निर्माण करते हैं, पर अपने जीवन और रहन-सहन में रक्ती भर परिवर्तन नहीं करते। परिणाम यह होता है कि जिस शिकार को हम पकड़ना चाहते हैं, वह हमसे दूर से दूर भागता जाता है। लोग यह क्यों भूल जाते हैं कि व्यक्तियों से ही समाज बनता है। यदि व्यक्ति आत्मानुशासन द्वारा अपने दैनिक जीवन में समता स्थापित नहीं करता, तो समतामूलक समाज कहाँ से बन जाएगा? स्वयं विलासितापूर्ण जीवन विताना और समाज में से शोषण की समाप्ति का नारा लगाना सिवाय आत्मप्रवंचना के और कुछ नहीं है।

बात को समाप्त करते-करते फिर दिनकर की ही पंक्तियाँ याद आ रही हैं—

१७६ :: ओ ! मेरे राजहंस

इस प्रकार मत पियो  
आग से जल जाओगे  
गांधी शरवत नहीं  
प्रखर पावक-प्रवाह था ।  
घोल दिया यदि इत्र  
कहीं अपनी शीशी का  
अनलोदक दूषित अपेय  
यह हो जाएगा ।



